वेद-संस्कृत-योग शिविर

८ से २० अक्तूबर १९७८ तक लखनऊ में विश्ववेदपरिषद् के तत्वावधान में "वेद-संस्कृत-योग शिविर" स्वामी धर्मानन्द सरस्वती की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि में आये वेदमन्त्रों की व्याख्या पूज्य स्वामी जी तथा आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री ने की। संस्कृत की शिक्षा आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, श्री सुधीन्द्रनाथ शास्त्री श्री ओजोमित्र शास्त्री तथा श्री प्रज्ञामित्र शास्त्री ने 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' के आधार प दी जिसके नवीन परिवर्द्धित संस्करण का विमोचन भी पूज्य स्वामी जी ने किया।

योग का प्रशिक्षण स्वामी ओमानन्द सरस्वती, धुनधारा प्रपात, नर्मदा तट निवासी ने तथा उनके सहयोगी श्री व रेन्द्र बहादुर सिंह ने किया। लगभग ४० व्यक्तियों ने भाग लिया।

आगामी योजना—वेद सम्बन्धी समस्त उपलब्ध आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ बीस हज़ार रूपयों की योजना स्वीकृत की गई जिसकी पूर्ति दान से की जायेगी। इस योजना में शिक्षा, कल्प, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी, ज्योतिष, वेदाङ्ग, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा श्रौत गृह्य सूत्रों का सरल हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जायेगा।

विश्व वेद परिषद् का चुनाव

लखनऊ में ८-१०-७८ को विश्ववेदपरिषद् की स्थायी प्रबन्ध समिति द्वारा अधिकारियों का निम्नलिखित प्रकार से निर्वाचन सम्पन्न हुआ—

अध्यक्ष—स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड, ज्वालापुर।

उपाध्यक्ष—(१) आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम० ए० लखनऊ तथा (२) पं० बिहारी लाल शास्त्री, बरेली।

मन्त्री—पं० सुधीन्द्र नाथ शास्त्री एम० ए०, डी२१ महानगर विस्तार, लखनऊ।

उपमन्त्री [१] श्री संजयकुमार, दिल्ली [२] श्री रामदुलारे द्विवेदी, लखनऊ।

कोषाध्यक्ष—श्री विज्ञान शंकर डिप्टी मैनेजर आर्डनैंस फ़ैक्टरी, कानपुर।

सहायक कोषाध्यक्ष—श्री जानकी प्रसाद सी १६६, महानगर, लखनऊ-६।

परीक्षा मन्त्री—श्री सतीश चन्द्र वर्मा, सी १०७ महानगर, लखनऊ।

आय व्यय निरीक्षक—श्री चन्द्रभूषण सिंह लखनऊ।

ओ३म्

आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, एम. ए., अध्यक्ष, विश्व वेद परिषद्

उत्तर प्रदेश का नेतृत्व करने को उद्यत

१ आर्यसमाज में आई हुई शिथिलता को दूर करने के लिये
२ प्रत्येक आर्य को सच्चा वेदप्रचारक बनाने के लिये
३ सभा की सम्पत्ति का उचित उपयोग करने के लिये
४ समस्त मतभेदों तथा पारस्परिक वैमनस्य को समाप्त करने के लिये।
५ युवकों तथा महिलाओं में नवीन जागृति लाने के लिये
६ उतर प्रदेश के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में संस्कृत तथा वेद का प्रचार करने के लिये।
७ हजारों आर्यसमाजों की स्थापना करने तथा शिथिल आर्यसमाजों को पुनर्जीवित करने के लिये।
८ वेद, वेदाङ्ग, आदि ग्रन्थों, विशेषकर महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों के प्रकाशन, वैदिक धर्म के उपदेशों, वैदिक शिक्षा के प्रसार के लिये।
९ दैनिक समाचार-पत्र द्वारा समस्त जनता में वैदिक सिद्धान्तों को पहुंचाने तथा आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को स्थान देने के लिये।
१० अस्पृश्यता का समूल नाश कर गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था स्थापित करने के लिये।
११ प्रदेश में राजार्य सभा के द्वारा आर्य स्वराज्य को साकार बनाने के लिये।

प्रदेश की आर्य जनता से प्रार्थना है कि एक वर्ष के लिये आचार्य जी को नेतृत्व का अवसर प्रदान करें।

पूर्णचन्द्र ऐडवोकेट पूर्व प्रधान, सार्वदेशिक सभा, दिल्ली

पूजनीय श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड जी आकस्मिक निधन पर शोक संवेदना

स्वर्गीय स्वामी जी के मैं अति निकट रहा। अपने जीवन में ऐसा सरल एवं सादा व्यक्ति देखने में नहीं आया। धन्य है ऐसी पुण्य देवात्मा को। शोक, केवल है तो इस बात का है कि स्वामी जी से रिक्त हुए स्थान की पूर्ति अब नितान्त असम्भव ही है।

दिवंगत आत्मा को परमेश्वर शान्ति दें।

❀ श्रद्धा प्रसून ❀

'श्री' सरस्वती के वरद पुत्र हे मानवता के संस्थापक।
'स्वामी' आर्य जनों के प्रियतम हे वेद ज्ञान के अध्यापक॥
'धर्म' कर्म के परम उपासक, वीतराग हे सन्त महा।
'आनन्द' मय जो जीवन छीना काल कुटिल हे हन्त अहा॥
'विद्या' के अनुरागी - बुधवर हे मानवता के सम्पोषक।
'मार्तण्ड' के सदृश उग्र हे पाप - पङ्क के प्रशोषक॥
गौरव गाथा गान कहां तक गायेगी वाणी मेरी।
'वेदभिक्षु' के श्रद्धा प्रसून ये भेंट चढ़ें गुरुवर तेरी॥

स्वामी ब्रह्मानन्द 'वेदभिक्षु'
C/O आर्य नव युवक संघ-हरफरी
(बदायूं) उ० प्र०

संवेदना प्रस्ताव

आर्य समाज बड़ाबाजार के साप्ताहिक सत्संग पर उपस्थित आर्यजन र्य जगत् के गौरव, मनीषी चिन्तक, शास्त्रार्थ महारथी, वीतराग, संन्यासी मी धर्मानन्द जी सरस्वती (पूर्व पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड)

वेदों में अनित्य भूगोल नहीं

'सरिता' (सित० प्रथम ७८) के डा० रामसरूपके लेखका उत्तर

आजकल मनुष्यों, पशु-पक्षियों, नदी-पर्वतों आदि के जो शुद्ध नाम मिलते हैं वे कैसे और कहां से रक्खे गये? महर्षि मनु ने इसका उत्तर नीचे लिखे श्लोक में दिया है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद-शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ (१-२१)

अर्थात् प्रारम्भ में सभी नाम वेद के शब्दों के आधार पर ही रक्खे गये। जब इस बात को समझ लिया तो यह भी समझ में आ जायगा कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद के यौगिक अर्थवाले शब्दों से लोक के रूढ़ि नाम रख लिये गये। (क्योंकि उससे पहले कोई साहित्य और भाषा नहीं थी) अतः वेद में किसी देश-विदेश के भूगोल (नदी, पहाड़, नगर आदि) का वर्णन नहीं हो सकता।

१. सप्त सिन्धु—

सप्तसिन्धु का अर्थ पंजाब की सात नदियाँ करना भ्रान्तिपूर्ण है। सप्त का साधारण अर्थ वेग से बहनेवाली और सात संख्या— दोनों हैं और सिन्धु का अर्थ है जल की नदी तथा ज्ञान की केन्द्र इन्द्रियाँ। प्रमाण स्वरूप मन्त्र यह है—

य ऋक्षाद् अंहसो मुचद्, यो वार्यात् सप्तसिन्धुषु।
वधर्दासस्य तुविनम्ण नीनमः॥ (ऋग्वेद ८-२४-२७)

जो इन्द्र (परमेश्वर) रीछ के समान घातक पाप से छुड़ाता है

और जो सप्तसिन्धुओं (आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा, वाणी और मन) में विज्ञान देता है ऐसा महाधनी परमेश्वर दुष्ट के घातक प्रहार को नीचा (समाप्त) कर दे।

यहाँ सप्तसिन्धु का अर्थ 'सात नदियों के देशवासी मनुष्य' करना अनुचित है।

२. आर्जीक—

आ पवस्व दिशां पते आर्जीकात् सोम मीढ्वः।

(ऋग् ६-११३-२)

हे सोम = सोम्य गुण सम्पन्न तेजस्वी (संन्यासी तथा राजा) तू आर्जीकात् = धर्मनीति और सरलता से, आ पवस्व = सब प्रकार पवित्र कर।

यहां ऋजु = सरल शब्द से बने 'आर्जीक' का अर्थ सरलता और धर्म से युक्त है। व्यास नदी के पास निवासी जनों ने अपने प्रदेश का नाम 'आर्जीक' इसी वेद शब्द को देखकर रख लिया।

३. शर्यणावत्—

इसी प्रकार 'शर्यणा' = हिंसक सेना, हिंसक पदार्थ हैं। उनसे युक्त स्थान का नाम 'शर्यणावत्' है। बाद को कुरुक्षेत्र वासियों ने अपने तालाब का यह नाम रख लिया क्योंकि उसके पास कुरुक्षेत्र में सेना रहने लगी।

सुषोमे शर्यणावति आर्जीके पस्त्यावति।

ययुर् निचक्रया नरः॥ (ऋग्वेद ८-७-२६)

इसका देवता (विषय) मरुतः = मनुष्य और सैनिक है। मन्त्र का अर्थ यह है कि वे मरुत् (उत्तम ऐश्वर्ययुक्त शर्यणावत् = सेनायुक्त, उन्नत प्रदेश में तथा आर्जीक = सरल,

वृत्ति के प्रजायुक्त नगर में, नीचे पहिये लगे हुए वाहन से, यात्रा किया करें।

इस प्रकार यहाँ किसी विशेष नगर आर्जीक और तालाब का वर्णन नहीं है।

४. जातियों के नाम—

जातियों के नाम भी वेद के शब्दों को देखकर रखे गये—

गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यो अङ्गेभ्यो मगधेभ्यः।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि॥

(अथर्व० ५-२२-१४)

अर्थात् कष्ट देनेवाले तक्मा = ज्वर को [गन्धारि] हिंसायुक्त, दुर्गन्धयुक्त,(मूजवद्)मूंज आदि घासवाले,(अङ्ग)पराश्रयी, दुर्बल और (मगध) दोषयुक्त पापकारी जनों और देशों के लिये त्यागते हैं। ये चारों नाम क्रमशः गन्धपलाशी (कचूर), गिलोय, बोल और पीपल औषधियों के भी हैं जो बुखार को दूर करने वाली है। भाव यह है कि भयंकर बुखार दुर्गन्ध, घास से युक्त देश में दुर्बल और कुपथ्य वालों को ही आया करता है और इन ४ औषधियों से दूर होता है।

इसी सूक्त के पांचवें मन्त्र में बह्लिक का अर्थ आच्छादित (बन्दस्थान) प्रदेश है। वेद का बह्लिक शब्द देखकर प्रदेश का नाम भी रख लिया गया। **इस प्रकार वेद के** शब्द यौगिक अर्थ रखने-वाले सामान्य शब्द **हैं, इन्हें जातियों के नाम** मानना बड़ी भ्रान्ति होगी।

५. पर्वत-वर्णन—

पहाड़ों के जो नाम रूढ़ प्रतीत होते हैं वे वेद में सामान्य रूप से यौगिक अर्थ रखने वाले हैं, जैसे—

(१) त्रिककुद्—तीन कालों तथा लोकों में श्रेष्ठ, तीन शिखर

(भूः, भुवः, स्वः -|- ३ वेद) वालाः परमात्मा, और ३ चोटियों वाला कोई पहाड़।

(२) हिमवद्—हिंसायुक्त कर्म, हिमके समान शीतल स्वभाव, वर्फवाला कोई पहाड़।

(३) मूजवद्—मूंज आदि घास वाला स्थान और पहाड़। बाद को इन सामान्य शब्दों को देखकर विशेष नाम रख लिये गये।

अथर्ववेद के निम्नलिखित ४र्थ काण्ड के नवम सूक्तके मन्त्र ८ तथा ६ में ये उपरिलिखित शब्द आये हैं—

अथो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः।
वर्षिष्ठः पर्वतानाम् त्रिककुत् नाम ते पिता॥
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि।
यातूंश्च सर्वान् जम्भयद् सर्वाश्च यातुधान्यः॥

अञ्जन औषधि बर्फवाले, तीन चोटियों वाले पहाड़ पर उत्पन्न होती है, उससे ज्वर आदि दूर होते हैं।

नदीवर्णन—

श्लेष (अनेक अर्थवाले) अलंकार से युक्त परमेश्वर के अमर-काव्य वेद में प्रायः तीन प्रकार के अर्थ होते हैं— (१) आध्यात्मिक, (२) आधिदैविक, (३) आधिभौतिक। तदनुसार 'नदी' के तीन अर्थ होते हैं—नाड़ी, जलधारा, विदुषीस्त्री। 'णद् अव्यक्ते शब्दे' (धातु-पाठ-भ्वादिगण) धातु से अच् प्रत्यय करने पर 'नद'(नदट्-पचादि-गण), और उससे ङीप् प्रत्यय होने पर नदी शब्द बनता है। इसका अर्थ हुआ शब्द करनेवाली, नाद करने वाली। यास्काचार्य ने निरुक्त में लिखा है—

'नद्यः कस्मात्? नदनाः इमाः भवन्ति शब्दवत्यः।'

अब शब्दवाली (१) शरीर में नाड़ियाँ हैं, (२) आकाश और

पृथ्वी पर जल की धारायें हैं, (३) मनुष्योंमें अध्यापिकायें, उपदेशिकाएं, गायिकाएं हैं और (४) अध्यात्म में प्रवाह रूप वृत्तियाँ हैं। इनका प्रकरणानुसार सामान्य रूप से वेद में वर्णन है। यह शब्द विशेषण के रूपमें हैं क्योंकि ऋ० २-४१-१६ में अतिशयद्योतक तमप् प्रत्यय लगाकर 'नदीतमे' सम्बोधन दिया है। यदि रूढ़ नाम होता तो तमप् प्रत्यय नहीं हो सकता था।

निरुक्त ५-२, निघण्टु ३-१६ 'नद का अर्थ 'स्तुति करनेवाला ऋषि' बताया है। यह चुरादिगणी णद भाषार्थः धातु से बनता है।

निघण्टु (३-१४) में नद धातु का अर्थ अर्चा—पूजा बताया है अतः जिनसे परमात्मा की अर्चा (योग उपासना) की जाये वे नाडियां और चित्त वृत्तियां नदी हुई। नाडियों में जो शब्द होता है वह व्यक्त नहीं, अतः असली नदी वे ही हुई। जल की नदियों में तो शब्द व्यक्त हो रहा है तब भी उन्हें नदी कह दिया गया।

ऋग्वेद (१० ७५-५) में १० नदियोंका नाम बताया जाता है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

यहां दस नदियोंको सम्बोधन करके कहागया कि तुम मेरे इस स्तोम (स्तुतियोग्य वचन)को स्वीकार करो और अच्छे प्रकार सुनो।

आध्यात्मिक अर्थ—दस नाड़ियां और उनमें व्याप्त आत्मशक्तियां परमेश्वर के वेद ज्ञान को प्राप्त करें तथा वे जीवात्मा की आन्तरिक ध्वनि (प्रेरणा) को सुनकर तदनुसार कार्य करें।

आधिभौतिक अर्थ—दस विशेषणों से युक्त स्त्रियां आत्मा की स्तुति को सुनें और सुनायें।

आधिभौतिक अर्थ—दस प्रकार की जल धारायें परमात्मा के नियम के अनुसार काम करें।

(१) इन दस नामों के अतिरिक्त इस सूक्त में ६ नदी-नाम और बताये जाते हैं। इस प्रकार १६ नदी-नाम ही क्यों वर्णन किये गये जब कि आर्यों के प्रदेश की ४२ नदियाँ बतायी जाती हैं ?

(२) जल की नदियाँ स्तुति नहीं सुन सकतीं अतः आधिभौतिक अर्थ में नदी का विदुषी उपदेशिका तथा अध्यापिका अर्थ अधिक संगत है।

(३) आध्यात्मिक पक्ष में नदी का अर्थ शरीर में स्थित नाड़ियां पूर्णतः सङ्गत है, जिन्हें इस सूक्त के पहले मन्त्र में "प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः" कहा गया है अर्थात् प्रत्येक सात नदियां रेचक, पूरक, कुम्भक के द्वारा २१ प्रकार की बन जाती हैं। जल की नदियों की २१ धारायें नहीं मिलतीं अतः वह अर्थ ठीक नहीं है।

(४) इसी मन्त्र से यह भी सिद्ध होता है कि सामान्य रूप से नित्य नदियां पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ लोकों में सात-सात हुआ करती हैं। सामान्य नदी के विशेषण मान कर इन शब्दों में नित्य भूगोल माना जा सकता है। इन्हीं शब्दों को लेकर नदियों के नाम रखे गये।

[५] यदि ये नाम रूढ़ प्रचलित जलकी नदियोंके होते तो यास्क आचार्य इन शब्दों के यौगिक अर्थ बताकर निर्वचन न करते। उनके निर्वचन निम्न प्रकार हैं—

(१) गङ्गा (गमनात्) अतिगमनशील, आत्मा को ज्ञान प्रदान करने वाली श्वेतवर्णा, सिता—इडा नाड़ी।

(२) यमुना (प्रयुवती, गच्छतीति वा)—मिलकर और अलग रहकर चलनेवाली, संयम में रखने वाली, असिता, नीलवर्णा—पिङ्गला नाडी।

(३) सरस्वती (सर इत्युदक नाम सर्तेस्, तद्वती) चेतना-जल

और ज्ञान-सुख से युक्त, अधिक धारा वाली—इडा, पिङ्गला को मिलाने वाली—सुषुम्ना नाडी।

(४) शुतुद्री (शु द्राविणी, क्षुप्रद्राविणी, आशु तुन्नेव द्रवतीति वा) वेग से गति करती हुई, भरी भरी चलने वाली, शीघ्र द्रवित होने वाली नाड़ी। इससे जिस नदी का नाम मनुष्यों ने रखा वह 'सतलज' है।

(५) परुष्णी का दूसरा नाम इरावती है इससे जोनाम रखा गया वह आजकल 'रावी' है। पर्ववती, भास्वती, कुटिलगामिनी। यह पर्ववाली और कुटिल गतिवाली नाडी है।

(६) असिक्नी—(अशुक्ला, असिता) नीलधारावाली नाड़ी—इसका दूसरा नाम 'चन्द्रभागा' है। यह नाम जिस नदी का रखा गया वह आजकल 'चेनाव' कहलाती है।

(७) मरुद्वृधा [मरुतः एनाः वर्धयन्ति] प्राणों से बढ़नेवाली नाड़ी, [यह नाम जिस नदी का रखा गया वह काश्मीर की 'मरुवर्धमान' नदी बतायी जाती है।] सब नाड़ियां इस नाड़ी में मिलती हैं और इसको बढ़ाती हैं।

(८) वितस्ता [विदग्धा, विवृद्धा, महाकूला] विस्तार बढ़ाने वाली नाड़ी, जिसके सिरे महान् हैं। इस शब्द से जिस नदी का नाम मनुष्यों ने रखा वह बेथ—झेलम नदी कहलाती है। शरीर में ताप उत्पन्न करनेवाली तथा त्वचाभर में व्याप्त नाड़ी बितस्ता है।

(९) आर्जीकोया [ऋजीक प्रभवा वा ऋजुगामिनी वा] मस्तक में एक विशेष स्थान ऋजीक है उससे निकलनेवाली और सीधी बहने वाली नाड़ी। इसी को 'विपाश्' कहा जाता है। यह नाम जिस नदी का रखा गया उसका आजकल 'व्यास' नाम है। इसी का एक नाम 'उरुंजिरा' भी है। इस नाड़ी को 'विपाट्' इसलिये कहते हैं क्योंकि इसके फटने पर प्राण देह को त्याग देते हैं और आत्मा शरीर के पाश को छोड़ देता है। यूरोपीय विद्वान् इसे हारो नदी बताते हैं।

(१०) सुषोमा—यदेनामभिप्रसुवन्ति नद्यः, सिन्धुः। जैसे समुद्र में सब नदियाँ आती हैं, उसी प्रकार अच्छी योग्यता से युक्त, उत्तम प्रेरणा-वाली, उत्तम वीर्यवहा नाड़ी सुषोमा है, जो शक्ति प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त इसी सूक्त के छठे मन्त्र में नदियों—नाड़ियों के ८ नाम और बताये गये हैं—

(११) तृष्टामा—आमाशय के भोजन को पचानेवाली नाड़ी।

(१२) सुसर्तु—भोजनरसको अच्छेप्रकार सर्वत्र पहुँचानेवाली नाड़ी।

(१३) रसा—समस्त शरीर में रस पहुँचानेवाली नाड़ी।

(१४) श्वेत्या—पक्वाशय से दूध के समान सफेद रस को रक्त में मिलानेवाली नाड़ी।

(१५) कुभा—नाड़ी जालसे देहकी त्वचाका निर्माण करनेवाली नाड़ी।

(१६) गोमती—वाणी का उच्चारण करानेवाली, इन्द्रियों को वश में करनेवाली नाड़ी।

[१७] क्रुमु—शरीरके अंगोंके चलनेकी व्यवस्था करनेवाली नाड़ी।

(१८) मेहत्नू—मूत्र बनाने और बाहर निकालने की व्यवस्था करनेवाली नाड़ी। ऋग्वेद ७-९५-२ में इन नदियों [नाड़ियों] में सरस्वती [सुषुम्ना] को शुचि [पवित्र] बताया गया है क्योंकि वह योगाभ्यास में ब्रह्मानन्द को प्रदान करनेवाली है।

नदी का अर्थ नाड़ी होने में निम्नलिखित प्रमाण हैं—

[१] हठयोग प्रदीपिका (३-११०)—

"इडा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।"

[२] शिव स्वरोदय (३७४)—

"इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी।
मध्ये सरस्वती विद्यात् प्रयागादिसमस्तथा॥"

[३] ऋग्वेद [१०-७५-५] के खिलसूक्त में मन्त्र—

"सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास् ते जना अमृतत्वं भजन्ते॥"

(४) छन्दोग्योपनिषद् (३-१६-२)—

"या धमनयस् ता नद्यः ।"

मुमूर्षु वशिष्ठ के पाश—मरणासन्न प्राणके बन्धन जिस नाड़ी में विगत हो जाते हैं, वह विपाश नाड़ी 'विरजा' भी कही जाती है। उसका वर्णन छान्दोग्य (८, ६, ६) तथा कठ उपनिषद् (६-१६) में निम्न प्रकार है—

(५) (६) "शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्

तासु मूर्धानमभि निःसृतैका ।

तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति ।"

(७) "प्राणो वै वशिष्ठ ऋषिः" (शतपथ ८-१-१-६)

ये सात प्रमाण डा० रामसरूप के "क्या कहीं इन नदी नामों की नाड़ी रूप से व्याख्या की गयी है?"—इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर हैं।

वशिष्ठ-पाश-विमोचन का वर्णन कथा (आख्यान) रूप से महाभारत के आदि पर्व (अध्याय १७५) में किया गया है। इसका आध्यात्मिक अर्थ ऊपर बताया गया है। आधिदैविक अर्थ में कथा का रहस्य इस प्रकार है—सृष्टिके आरम्भ में विश्वामित्र (आदित्य) ने वसिष्ठ (उदक-संघात) के शत पुत्रों (सैकड़ों वाष्परूप सूक्ष्म जलांशों) को नष्ट कर गौ (पृथिवी) को ग्रहण किया, (जल के बाहर किया)। वसिष्ठ के अनेक बार आत्मघात-प्रयत्नों (उदक-संघात के भिन्न भिन्न रूपों में परिवर्तनों) से ऋतुओं की उत्पत्ति हुई। वसिष्ठ ने अपने को पाशों में बाँधा (जलसमूह मेघरूप में बदला)। उनके पाश टूटने पर (जल की वर्षा होने पर) विपाट्—पाश-रहित जलधारा बही, और शतधाराओं में वर्षा होने से उसका नाम शतद्रु भी हुआ।

शरीर की दस मुख्य नाड़ियों का वर्णन संगीत सम्बन्धी केरल लिपि की पुस्तक में भी मिलता है—

इडा च पिङ्गलाख्या च सुषुम्ना चास्थिजिह्विका ।
अलम्बुसा तथा पूषा गान्धारी शङ्खिनी कुहूः ।
देहमध्यगता एता मुख्याः स्युर्दश नाडयः ॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वेद में नदी शब्द का अर्थ शरीर की नाड़ियाँ यथार्थ है ।

अश्वमेध का स्वरूप

(प्रोफेसर विश्वनाथ, विद्यामार्तण्ड, देहरादून)

"यजुर्वेद-स्वाध्याय तथा पशु-यज्ञ-समीक्षा" की पाण्डुलिपि के आधार पर अश्वमेध के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

[१] मेध शब्द का प्रयोग, याज्ञिक दृष्टि से, उन यज्ञों के लिये होता है जिनमें कि पशुओं की हिंसा तथा उनके मांसों की आहुतियां दी जाती हैं। परन्तु "देवा मेध्यासः" (अथर्व ४।१४।१) में मेध्यासः का अर्थ है पवित्र, न कि मांस-लोलुप। इसीलिये "अद्रुह्वा देवा वर्धियासः" (ऋ० २।४१।२१), द्वारा देवों को जिघांसारहित (द्रुह जिघांसायाम्) और यज्ञिय (पूजनीय) कहा है। इसी प्रकार "प्रजायै गृहमेधिनाम्' (रघुवंश १।७) में भी मेधशब्द हिंसार्थक नहीं।

[२] अश्वमेध प्रकरण में अश्व शब्द तीन अर्थों में मुख्यरूप में प्रयुक्त हुआ है— [१] अश्व अर्थात् घोड़ा। [२] अश्व, अर्थात् अश्वशक्ति सम्पन्न व्यक्ति। [३] सूर्य।

यजुर्वेद अध्याय २२वें में "ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजा-

पतये तेन राध्यासम्" (२२।४) द्वारा सम्राट् ब्रह्मा अर्थात् चतुर्वेद-विद् प्रधानमन्त्री को अश्व के बांधने की सूचना देता है, और ब्रह्मा सम्राट् से कहता है कि — "तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि" (२२।४)। तदनन्तर अश्वमोचन किया जाता है, और यजुर्वेद अध्याय २३ के ७वें मन्त्र के अनुसार अश्व का प्रत्यावर्त्तन होता है। अश्व यत्र-तत्र स्वेच्छापूर्वक विचरता है, और अश्व की रक्षा के लिये रक्षा-पुरुष अश्व के अनुगामी होते हैं। यथा "देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं रक्षत" (२२।१६)। अश्व जिस जिस प्रदेश में जाता है वहां वहां यदि अश्व के विचरने में कोई बाधक नहीं होता, तो समझा जाता है कि अमुक अमुक प्रदेश के राज्य, सम्राट् को स्वाधिपति मानते हैं। और यदि किसी राज्य से अश्व के विचरने में बाधा उपस्थित की जाती है तो अश्व के रक्षा पुरुष वहाँ युद्ध करते हैं। यह अश्व मानो सम्राट् का राष्ट्रीय-झण्डा या सम्राट् का प्रतिनिधि होता है।

[३] लक्षणा द्वारा अश्व का दूसरा अर्थ है 'अश्वशक्ति सम्पन्न व्यक्ति'। प्रकरणानुसार यह व्यक्ति है—सम्राट्। अश्वमेध सम्बन्धी मन्त्रों में 'अश्वकः' (यजु० २३।१८) शब्द का भी प्रयोग हुआ है। 'अश्वक' शब्द में 'इव' अर्थ में कन् प्रत्यय हुआ है 'इवे प्रतिकृतौ'[१] (अष्टा० ५।३।९६)। इसीलिये महर्षि दयानन्द ने 'अश्वकः का अर्थ किया है 'घोड़े के समान शीघ्रगामी जन'। प्रकरणानुसार यहां 'जन' से अभिप्राय सम्राट् का है। क्योंकि यजुर्वेद अध्याय २० से अध्याय ३० तक, अश्वमेध सम्बन्धी राष्ट्रिय भावनाओं का ही वर्णन हुआ है। 'साम्राज्याय सुक्रतुः' (२०।२)

---

[१] 'प्रतिकृति' द्वारा तृणादिनिर्मित सदृशाकृति का ग्रहण आवश्यक नहीं। गुणकर्मसादृश्य भी प्रतिकृति द्वारा गृहीत हो सकते हैं।

आदि द्वारा साम्राज्य तथा सम्राट् का वर्णन है। इसी सम्राट् को 'त्रातारमिन्द्रम्' (२०।५०) तथा 'सुत्रामा इन्द्रः' (२०।५२) में इन्द्र कहा है। यजुर्वेद ८।३७ में इन्द्र को सम्राट कहा है, यथा 'इन्द्रश्च सम्राट् वरुणश्च राजा।'

[४] मन्त्र-प्रकरणानुसार अश्व शब्द का तीसरा अर्थ सूर्य है। [क] उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्" (यजु० २६।१२) में 'अर्वा' अर्थात् अश्व को समुद्र, अर्थात् अन्तरिक्ष से (समुद्र अन्तरिक्ष नाम, निघं० १।३) या पुरीष अर्थात् जलीय-समुद्र (पुरीषम् उदकम् निघं० १।१२) से उदित होता हुआ कहा है। जलीय समुद्र के निवासियों तथा जलीय समुद्र के यात्रियों को सूर्य जल से उदित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। [ख] यजु० २६।२२ में अर्वा अर्थात् सूर्य के सम्बन्ध में कहा है कि 'तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति', अर्थात् तेरे सींग जङ्गलों में विविध स्थानों में स्थित हैं, जो कि जङ्गलों के अन्धकार का अपहरण करते हैं (जर्भुराणा ह्वृ हरणे, ह्यहोर्भः छन्दसि, -।- कानच्) घोड़े के तो सींग नहीं होते। यहाँ शृङ्गाणि का अभिप्राय सूर्य की किरणों से है, जो कि जङ्गलों में भी प्रविष्ट होकर वहाँ के अन्धकार का अपहरण करती हैं। (शृङ्गाणि ज्वलतो नाम, निघं० १।१०) अतः ज्वलनशील सूर्य किरणों को मन्त्र में शृङ्गाणि कहा है। इसी प्रकार सूर्य को 'सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्" (अथर्व० ४।५।१) में समुद्र से ऊपर चढ़ते हुए सूर्य को हजारों सींगोंवाला तथा वर्षा करनेवाला कहा है। इस मन्त्र में भी शृङ्ग का अर्थ किरणें ही है। [ग] हिरण्यशृङ्गोऽयोऽस्य पादा मनोजवाऽअवर इन्द्र आसीत्'.(यजु० २६।२०) में अर्वा अर्थात् अश्व को सुवर्ण के सींगोंवाला, तथा सुवर्णमय पैरोंवाला कहा है (अयः हिरण्यनाम, निघं० १।२) घोड़ेके सींग नहीं होते, अतः उसके सुवर्ण के सींग असम्भव हैं, न ही उसके पैर सुवर्णमय होते हैं। अतः यह वर्णन सूर्य में ही उपपन्न होता है। सूर्य के पिण्ड को

सिर मानकर, उसकी द्यु लोक की ओर उत्क्षिप्त किरणों को शृङ्गाणि कहा है, तथा पृथिवी पर आती किरणों को सुवर्णमय पाद कहा है। कविता में सूर्यकी किरणों को—जोकि पृथिवी की ओर आती हैं—पाद भी कहते हैं। यथा 'बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्', पञ्चतन्त्र १।३२८)। सूर्य की पादरूपी किरणों को 'मनोजवः' अर्थात् मनःसमान वेगवती भी कहा है। क्योंकि सूर्यकी किरणें, १० करोड़ मीलों को तय कर, ८ मिनिटों में भूतल पर पहुँच जाती हैं।

(घ) 'ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः संशूरणासो दिव्यासोऽत्याः। हंसाऽइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः' ॥(यजु० २६।२१) यहाँ अत्याः और अश्वाः द्वारा सूर्यकी किरणोंका ही वर्णनहुआ है।

[ङ] निरुक्त (४-२-१४) में भी 'उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः' (बृहदा० १।१) में उषा को अश्व का सिर कहा है। उषा का सम्बन्ध सूर्य के साथ तो युक्ति-युक्त और प्रत्यक्ष दृष्ट है, घोड़े के साथ नहीं।

यजुर्वेद का संकलनकर्त्ता तथा शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् का रचयिता एक ही याज्ञवल्क्य है। इसलिये बृहदारण्यक का प्रमाण, अश्वमेध प्रकरण में पठित अश्व के स्वरूप पर प्रामाणिक प्रकाश डालता है। यजुर्वेद के अश्वमेध सम्बन्धी मन्त्रों में और भी प्रमाण हैं जिनके द्वारा यह प्रमाणित होता है कि अश्व द्वारा सूर्य का ग्रहण करना चाहिये, न कि घोड़े का।

[५] अश्वमेधीय मन्त्रों की व्याख्या महर्षि दयानन्द ने आधिभौतिक दृष्टि से की है। 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' (शत-ब्रा० १३।१।६।३) की दृष्टि से महर्षि ने इन मन्त्रों में राष्ट्रिय जीवन तत्त्वों का निर्देश किया है। राष्ट्रमें मनुष्य जीवन, जीवनोपयोगी सामग्री, प्रजा, सम्पत्ति आदि नाना वस्तुओं की सत्ता होती है, जो कि महर्षि के भाष्य में वर्णित हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय १ ब्राह्मण २ में कहा है कि 'एष ह वा अश्वमेधो य एष तपति। तस्य संवत्सर आत्मा' अर्थात् यह अश्वमेध है जो कि यह सूर्य तपता है। इस प्रमाण में अश्व का

अर्थ है सूर्य और जो सूर्यका तपना है वह अश्वमेध है। इस प्रमाण के आधार पर यजुर्वेद अध्याय २५ और २६ के अश्वमेध सम्बन्धी मन्त्रों को व्याख्या 'यजुर्वेद-स्वाध्याय तथा पशु-यज्ञ-समीक्षा' में मैंने अश्व अर्थात् सूर्य परक की है। तथा अध्याय २३ के मन्त्रों की व्याख्या राष्ट्रपरक ही की है। सूर्य का तपना रूपी अश्वमेध एक महायज्ञ है। क्योंकि सूर्य के ताप के कारण वर्षा होती, वर्षा से औषधि वनस्पतियां पैदा होतीं, और हम जीवित रहते हैं।

वेद और शकुन

(आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम०ए०)

जो जैसा होता है, जिसके जैसे विचार होते हैं, उसे सर्वत्र वैसा ही दिखायी देता है। यही हाल श्री रामसरूप शास्त्री का हो रहा है। उन्हें सर्वत्र वेद में अज्ञानमयी बातें ही दिखायी दे रही हैं। 'सरिता' दिल्ली को एक अच्छा हठी, दुराग्रही तथा वेदों का अपमानकर्ता लेखक मिल गया है। उनके तीन लेखों का मुंहतोड़ उत्तर दिया जा चुका है—'सरिता' के वेदद्वेषी सम्पादक ने उन्हें छापना स्वीकार नहीं किया। क्या यह पक्षपात नहीं? सम्पादक को तो दोनों पक्ष पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने चाहिये—

[१] 'सरिता' फरवरी ७७ द्वितीय अंक के 'वैदिक यज्ञों में पशुबलि' का उत्तर 'वैदिक यज्ञों में पशुरक्षा' शीर्षक से 'आर्यमित्र' लखनऊ ४-९-७७ के अंक में,

[२] 'सरिता' मई ७८ प्रथम अंक के 'वेद' का उत्तर 'वेद का आविर्भाव' आर्यमित्र लखनऊ ४-६-७८ में, 'आर्य मर्यादा' जालन्धर २-७-७८ में, आर्य संदेश' दिल्ली के ९-७-७८ के अंक में, तथा

[३] 'सरिता' दिसम्बर ७७ द्वितीय अंकके 'वेदों में जादूटोना'

का उत्तर 'अथर्ववेद में विज्ञान है, जादूटोना नहीं' शीर्षक से 'वेद-ज्योति' लखनऊ अंक १०, अक्टूबर १९७८ में दिया गया है।

अब 'सरिता' अगस्त [प्रथम] १९७८ के अंक में श्री रामस्वरूप शास्त्री ने 'वेद और शकुन' शीर्षक लेख में अपनी अल्पज्ञता और नासमझी और हठका अच्छा परिचय दिया है। जिन्हें वे अज्ञानमयी बातें बता रहे हैं वे वस्तुतः पूर्ण ज्ञानमयी, स्वप्न-विज्ञान तथा पशु-पक्षिविज्ञान से युक्त वैज्ञानिक बातें हैं। इन्हें अज्ञानमयी बताना ही अज्ञान है।

[१] मनुष्यसम्बन्धी शकुन—अथर्व १९-५७-३ में कहीं यह नहीं कहा गया कि बुरा सपना अपशकुन या अच्छा सपना शकुन है। यह स्वप्न-विज्ञान बतानेवाला मन्त्र है जिसमें स्वप्न अवस्था में कल्याणकारी विचारों का आना अच्छा और पाप के विचारों का आना बुरा बताया गया है—

देवानां पत्नीनां गर्भ, यमस्य कर, यो भद्रः स्वप्न।
स मम, यः पापस् तद् द्विषते प्रहिण्मः॥

यहाँ अच्छे स्वप्न को देवों की पत्नियों अर्थात् आत्मा की विविध शक्तियों तथा मानसिक वृत्तियों को उत्पन्न करनेवाला बताया है। सभी महापुरुष दिव्य स्वप्नों (भविष्य के उज्वल स्वरूपों) के द्रष्टा होते हैं। उसे यम का करनेवाला अर्थात् पापयुक्त विचारों का दूर करनेवाला भी बताया गया है। इसमें शकुन की कोई बात नहीं।

देवों की पत्नियाँ इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं, कल्पित स्वर्ग की अप्सरायें नहीं हैं। यम को पुराण में वर्णित यमराज समझना महा-भ्रान्ति है। यम का अर्थ संयम, नियम, योग के प्रथम अंग ५ यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) है। जब स्वप्न में भी अच्छे विचार आयें तब समझना चाहिए कि यम, नियम, संयम का

पालन हो रहा है और हो सकता है। इस प्रकार अच्छा स्वप्न यम का करनेवाला है। इसे 'यमराज का पंजा' बताना महा अज्ञान है। अगर दम है तो श्री रामसरूप उसे दिखायें और सिद्ध करें कि वह पंजा कहाँ है और कैसा है।

(क) छींक—

अथर्व० १६-८-४ में अधिक छींक आना दूर करने की बात कही गयी है। वस्तुतः यह रोग है। जुकाम और नजला होने से तथा विजातीय तत्त्व नाक द्वारा वायु के साथ फेफड़े और श्वास-नलिका में पहुँचने पर छींकें आने लगती हैं। यह तो चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान की बात हुई। यहाँ यह नहीं कहा गया कि 'यात्रा के समय छींक आजाना बुरा शकुन है।' मन्त्रमें केवल 'परिक्षवम्' शब्द है जिसका अर्थ केवल छिक्का रोग है। मन्त्र इस प्रकार है—

अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्।
सर्वैर् मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितः सुव॥

छींक की बीमारी दूर करने के साथ यह भी प्रार्थना की गयी कि घर के घड़े, कलश, पात्र खाली न रहें—धन-धान्य, दूध, जल आदि से भरे रहें। यहाँ खाली घड़ा अपशकुन है—यह अर्थ करना महाभ्रान्ति और दुराग्रह है।

(ख) पशु-पक्षी सम्बन्धी शकुन—

'शकुन' का अर्थ ही पक्षी है। पक्षिविज्ञान हमें बताता है कि जगत् में आने वाले उत्पातों का ज्ञान पशुपक्षियों को स्वाभाविक रूप से शीघ्र हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त यह भी विचारना और मानना आवश्यक है कि पक्षियों के कपिंजल आदि नाम कब और कहाँ से रखे गये। वेद में यह शब्द यौगिक रूप में पुरुषों के विशेषण के रूप में आये हैं। उन्हीं शब्दों को देखकर वैसा गुण

रखनेवाले या वैसा कार्य करनेवाले पशुपक्षियोंके नाम भी रखे गये। इसी बात को महर्षि मनु ने (१-२१ में) स्पष्ट कहा है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

१. कपिंजल–

ऋग्वेद २ य मण्डल के ४२वें सूक्त में कपिंजल का वर्णन है। यह कहीं नहीं लिखा कि इस पक्षी का दाहिनी ओर बोलना अच्छा सगुन है। मन्त्र निम्न प्रकार है—

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमंगलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः॥

[ऋग्: २-४२-३]

इस मन्त्र में तथा इन ४२, ४३ सूक्तों के किसी मन्त्र में कपिंजल पक्षी का नाम नहीं है। कथायें बहुत परवर्ती और कल्पित हैं। उनका वेदमन्त्रों में अस्तित्व नहीं है। फिर इन्द्र कौन है यह भी समझना चाहिये। जिनके मन में पुराणों का कल्पित स्वर्ग का राजा इन्द्र घुसा हुआ है वे ऊटपांग कल्पनायें किया करते हैं। इन्द्र तीतर का रूप कैसे धारण कर लेगा? गृत्समद तीतर से कैसे बातें करेंगे? रामसरूप जी करके दिखावें। वस्तुतः यह सृष्टिक्रम के विरुद्ध असम्भव कल्पना है।

वास्तव में यहाँ शकुन्ति का अर्थ शक्तिशाली और शान्तिकारक विद्वान् है। ऐसे विद्वानों को घरों में अपनी दाहिनी ओर बिठाकर उससे उपदेश देने और सुनने की प्रार्थना इस सूक्त में की गयी है। आगे सूक्त ४३ के पहले मन्त्र में उसे गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दों में सामगान करनेवाला बताया गया है। क्या तीतर पक्षी सामगान कर सकता है? वास्तव में वेद का दूषित अर्थ करनेवाले सायण और

पाश्चात्य भाष्यकारों की जूठन चाटनेवाले इसी प्रकार वेद का अनर्थ करते हैं और ऋषियों के किये सच्चे अर्थ को अनर्थ बताने का दुस्साहस किया करते हैं। उलटा चोर कोतवाल को डाटे—वाली कहावत इन पर चरितार्थ होती है।

निरुक्त के अपने पक्ष में प्रस्तुत किये प्रमाण ने श्री रामसरूप की बात का ही खण्डन कर दिया। वहाँ कपिंजल द्वारा दक्षिण, उत्तर, पूर्व, पश्चिम सभी ओर से कल्याणकारी वचन कहने की बात कही गयी है। उससे यह बात खण्डित हो गयी कि दक्षिण दिशा में कपिंजल का बोलना शुभ शकुन होता है।

२. कपोत–

ऋग्वेद १०-१६५-१ में तथा अथर्व० काण्ड ६ के २७, २८, २९वें सूक्त में कपोत शब्द आया है—

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥

(अथर्व० ६-२७-१)

यहाँ कपोत राजदूत का विशेषण है। यह शब्द उणादि कोष के १-६२ के सूत्र 'कवेरोतच् पश्च' सूत्र से 'कबि' धातु से ओतच् प्रत्यय और ब के स्थान पर प करने पर सिद्ध होता है। कबि धातु का काशकृत्स्न धातुपाठ में वर्णन करना अर्थ है, तदनुसार 'वर्णन करनेवाला' दूत अर्थ ही सुसंगत है। मन्त्र का भाव यह है कि दूत को विपत्तियों का ज्ञान करानेवाला और दूर करनेवाला होना चाहिये तथा उसकी अर्चा (सत्कार) करनी चाहिये। इस कपोत शब्द से ही कबूतर पक्षी का नाम कपोत रख दिया गया और उससे दूत का काम भी लिया जाने लगा। उसे असगुन कहीं नहीं कहा।

कपोत का एक दूसरा अर्थ क = जल का पोत = जहाज भी हो

सकता है। वह निऋति = सेना का वाहक और शकुन = शक्तिशाली होकर तथा यात्रा का साधन बनकर मनुष्यों का कल्याण करता है।

३. उल्लू–

वेद में जैसे कपोत का अर्थ विद्वान् दूत है वैसे ही उलूक का अर्थ मूर्ख, कुटिल और व्यर्थ बोलनेवाला दूत है। श्री रामसरूप को उलूक का लौकिक अर्थ उल्लू ही समझ में आ रहा है—यह उनकी समझ की बलिहारी है। मन्त्र और उसका शुद्ध अर्थ निम्न प्रकार है—

> अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
> यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥

(अथर्व० ६-२६-१)

अर्थात् पत्तोंवाले शस्त्र उन शत्रुओंपर गिरें जिनका मूर्ख दूत व्यर्थ बकवाद करता है अथवा विद्वान् दूत, अग्रणी नेता राजा पर, अपना अधिकार जमाना चाहता है। सूक्त का देवता यम है जिसका अर्थ नियन्ता शासक है किन्तु पुराणों का चश्मा चढ़ाये श्री रामसरूप को मृत्यु के कल्पित देवता यमराज ही दिखायी पड़ते हैं। मन्त्र में कबूतर या उल्लू के सगुन असगुन की कोई बात नहीं है।

४. कौआ–

अथर्व० १२-३ में गृहस्थ को स्वर्ग (सुख का साधन) और वीर्य को ओदन कहा गया है, पर अनर्थ करनेवालों को स्वर्ग पहुँचाने वाला भात दिखायी पड़ रहा है। क्या भात स्वर्ग में पहुँचा सकता है? अगर ऐसा भात कहीं पर हो तो श्री रामसरूप उसे दिखायें। वे स्वयं उस भात को खाकर स्वर्ग को क्यों नहीं चले जाते?

मन्त्र में कृष्ण शकुन का अर्थ काले कर्मवाला, शक्तिशाली चोर, डाकू, व्यभिचारी है। वह अगर घर में आकर कुटिल चालें

चले और अन्न आदि को लूटकर ले जाना चाहे तो आपः = आप्त (श्रेष्ठ) पुरुष ऐसा न होने दें। इसी प्रकार यदि दासी = क्षयकारिणी शक्ति राजा को भ्रष्ट करना चाहे तब भी विद्वान्, धर्मात्मा, आप्त-जन उसकी रक्षा करें। दासी शब्द 'दसु उपक्षये' धातु से बनता है। मन्त्र निम्न प्रकार है—

यद्‌यत् कृष्णः शकुनः एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद।
यद् वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्ते उलूखलं मुसलं शुम्भतापः॥
(अथर्व० १२-३-१३)

कृष्ण शकुन का अर्थ मलीन कौआ आदि पक्षी और दासी का अर्थ सेविका करने पर भी यह अर्थ होगा कि कौआ किसी भोजन में अपनी चोंच न डालने पाये (क्योंकि वह उसी चोंच से विष्ठा आदि दूषित वस्तुओं को खाया करता है जिनके अंश उसकी चोंच में लगे रहते हैं), और दासी के गोले हाथ भी प्रायः अशुद्ध होते हैं। जिनमें लगे कीटाणु ऊखल मूसल आदि में न लगने पावें। यदि लग गये हों तो उन्हें जल से शुद्ध किया जाये।

यह तो स्वास्थ्य-विज्ञान की बात हुई—अपशकुन की कोई बात नहीं है।

५. मृग—

डा० रामसरूप अथर्व० १०-३-६ में मृग के दौड़ने से अपशकुन होने का वर्णन मान रहे हैं जो पूर्णतया अनर्थ है। मन्त्र में अपशकुन का संकेत भी नहीं है। वैदिक कोष निरुक्त में मृग का अर्थ हिंसक पशु सिंह आदि किया गया है। मन्त्र और उसका शुद्ध अर्थ निम्न प्रकार है—

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं
मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्।

परिक्षवाच्छकुनेः पापवादाद्
अयं मणिः वरणो वारयिष्यते ॥

अर्थ—सोकर यदि तू कोई बुरा स्वप्न देखे कि सिंह आदि हिंसक पशु यदि अयोग्य रीति से तुझ पर आक्रमण कर रहा है तो उससे, तथा बुरी डरावनी बोलीवाले पक्षी के डराने झपटने से यह 'वरण' तुझे बचायेगा।

वरण एक वनस्पति है जिसे 'बरना' कहते हैं। नि० र० में लिखा है—

'वरुणो' कृमीन्। रक्तदोषं शीर्षवातं मूत्राघातं च हृद्रुजम्।
हृद्‌रोगं नाशयत्येव

अर्थात् बरना औषधि सिर की बात को, हृद् रोग आदि को नष्ट करता है। स्वप्न का आना, नींद ठीक न आना, स्वप्न में भय लगना आदि सिर में वात के प्रकोप से होता है उसे 'बरना' नष्ट कर देता है।

अथर्व० १९-८-३ में भी पशु-पक्षियों से शुभ शकुनों की प्रार्थना न होकर अच्छे पक्षियों का ठीक उपयोग लेने की बात कही गयी है।

६. **मेंढक—**

उप प्रवद मण्डूकि, वर्षामावद तादुरि।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व, विगृह्य चतुरः पदः ॥

(अथर्व० ४-१५-१४)

इस मन्त्र में मण्डूकी का अर्थ श्लेष अलंकार से मेंढकी और चित्तवृत्ति दोनों हैं। जैसे वर्षा में मेंढकी खूब बोलती और चारों पैर फैलाकर तालाब में तैरती है वैसेही (तादुरी) उस परमेश्वर की तरफ जानेवाले आत्मा की पुत्री (मण्डूकी) आनन्द रस में निमग्न चित्त

की वृत्ति आनन्द की वर्षा होने पर सर्वत्र परमात्मा का गान करती है, और हृदय सरोवर में अपने चारों अन्तःकरणों को फैलाकर आनन्द से तैरा करती है। कितनी सुन्दर उपमा है।

इस मन्त्र में मेंढकों के वर्षा में बोलने के शकुन की कोई बात नहीं है।

(ग) दैवी शकुन—

अथर्व० १९-९-८ में भूकम्प आदि से बचने की बात कही गयी है। आश्चर्य और खेद है कि श्री रामसरूप ने उसे भी वैदिक युग का अपशकुन बता दिया, जिसे हठ और अनर्थ ही कहा जायेगा। मन्त्र इस प्रकार है—

> शं नो भूमिर्वेपमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
> शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यती ॥

अर्थात काँपती हुई पृथ्वी, उल्का-पात, आँधी-तूफान, गौओं का रक्तमिश्रित, (रोगयुक्त) दूध और नीचे को धँसती पृथ्वी शान्त होकर कल्याणकारिणी हों। यहाँ प्राकृतिक उत्पातों का वर्णन भौतिक विज्ञान के रूप में है और गौओं के स्तनों में क्षत आदि हो जाने से दूध के साथ खून आना पशु-चिकित्सा-विज्ञान है। ये वर्णन किसी भी प्रकार से अपशकुनों के वर्णन नहीं हैं।

(घ) अपशकुनों का उपचार

इस अनुच्छेद में डा० रामसरूप ने बड़ी भ्रान्तिपूर्ण बात लिखी है कि अपशकुनों के प्रभाव को दूर करने के लिये गंडे तावीज धारण किये जाते थे आदि। वस्तुतः जिन्हें गण्डा तावीज कहा जाता है वे विभिन्न औषधियाँ आदि हैं। और जिन्हें वे अपशकुन कह रहे हैं वे हैं विविध रोग और उत्पात आदि।

अथर्व ७-६४-१ में 'कृष्ण शकुनि' का अर्थ काला कौआ बताना महान् अनर्थ है। इसका अर्थ मन का कुत्सित विचार और पाप है क्योंकि मन्त्र का देवता (प्रतिपाद्य विषय) निऋतिः = पाप है। इसी मन्त्र में 'आपः' का अर्थ जल न होकर व्यापक परमात्मा है जिससे रक्षा की प्रार्थना की गई है। डा० रामसरूप ने ऋग्० २-४२-२ का भी भ्रान्तिपूर्ण अनर्थ किया है। इस सम्बन्ध में पहले २-४२-३ के प्रकरण में लिखा जा चुका है। शकुनि का अर्थ वहाँ पर पक्षी न होकर शक्तिशाली उपदेशक है। (देखो पृष्ठ १७)

अन्त में प्रार्थना है कि डा० रामसरूप की जितनी जल्दी ऐसी अज्ञानमयी बातों से जान छूटे उतना ही भला। शास्त्रार्थ के लिये उन्हें चैलेंज किया जाता है।

अन्तिम वेद-प्रवचन का सारांश

[श्री स्वामी विद्यानन्द विदेह, जन्म १५-११-१८६६, देहान्त ५-३-७८]

माताओ और पुत्रियो ! बन्धुओ और पुत्रो !

इस समय आप अथर्ववेद के एक मन्त्र पर विचार करेंगे। इसका पता है अथर्ववेद का कांड पांच, सूक्त तीस और मन्त्र छह।

इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि॥

इस मन्त्र की शिक्षा जिनके भी जीवन में आ जाती है वे ऊँचे उठते चले जाते हैं। परिवार में ये तीनों शिक्षायें आ जाएँ तो परिवार ऊँचा उठता चला जाता है। राष्ट्र के अन्दर ये तीनों शिक्षाएँ आ जाती हैं तो राष्ट्र ऊँचा उठता चला जाता है और गुरुकुलों में, कालिजों में, स्कूलों में भी ये शिक्षाएँ आजाएं तो सब ऊँचे उठते चले जाते हैं।

पहली शिक्षा है—हे पुरुष ! (इह) यहां, इस संसार में (एधि) तू सुकर्म कर। कैसे कर्म कर ? (सर्वेण मनसा) सम्पूर्ण मन के साथ, पूरे मन के साथ कर।

दूसरी शिक्षा—दो यम के दूत हैं। वो हमको पकड़े हुए हैं। तो वेदमाता कहती है, 'दूतौ यमस्य मानु गाः।' यम के दो दूत हैं, न तो तू उनके निकट जा और न उनको अपने निकट आने दे। यम के दो दूत हैं—विलास और प्रमाद, लस्ट एंड लेजीनेस। ये दो यमराज के दूत हैं। ये पीछे पड़े हुये हैं। कितनी सुन्दर चीज है ! अगर प्रमाद नहीं है, तो आलस्य नहीं है, और विलास नहीं है। विलास और प्रमाद का सम्बन्ध है। विलासी प्रमादी होगा ही, रुक नहीं सकता। तीन चीजें जो करेगा वो विलास से भी मुक्त रहेगा। पहली चीज है—अंगरेजी में उसको कहते हैं—टू बिजी—बहुत व्यस्त, अतिव्यस्त। अतिव्यस्त रहनेवाला न विलासी हो सकता है न प्रमादी। दूसरी चीज और है बहुत सुन्दर। महापुरुषों के जीवनचरित पढ़ो। और तीसरी चीज दान देने को बड़ा दिल चाहिये। लाखों कमा सकता है, लेकिन सौ रुपये देने को भी बड़ा दिल चाहिए।

तीसरी शिक्षा—'अधि जीवपुरा इहि।' कि जिन्दों की तरह रहो। कब्र में मुर्दा गति नहीं करता, श्मशान में कोई गति नहीं होती। जीवन वो ही है जो गतिशील हो प्रगतिशील हो।

निर्णय के तट पर "शास्त्रार्थ-संग्रह"

श्री अमरस्वामी जी कृत यह ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।
मूल्य ३०)। अभी अग्रिम ग्राहक बननेवालों को २०) में मिलेगा।
शीघ्र २०) भेजकर मँगाइये।

निवेदन—अमर स्वामी, द्वारा लाजपतराय आर्य,
दयानन्दनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

देववाणीगौरव गीतिका

(रचयिता– ब्रह्मनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, विद्यामार्तण्डः, ज्वालापुरम्)

छन्दः—गीतिका≡२६ मात्राणाम् एकः चरणः

—हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हम को दीजिए ।]'

देववाणी सर्वभाषामातृभूता सत्तमा ।
मधुरतमभावाऽतिसरलाऽखिलविपश्चिद्वन्दिता ।।१।।

नैव माधुर्यं न सारल्यं क्वचित् किल तादृशम् ।
अद्भुतैः सुमनोज्ञरत्नैः देवगीः समलंकृता ।।२।।

नास्ति साहित्यं क्वचिद्, यत् तत्तुलामधिरोहति ।
दिव्यभाण्डागारभूता, मोदशान्त्यानन्ददा ।।३।।

लब्धुकामा ये सुखं ये ज्ञानमत्यानन्ददम् ।
तैरियं शुभदेववाणी यत्नतोऽभ्यस्या सदा ।।४।।

एतया न विना पुरातन-वृत्तमप्यधिगम्यते ।
नैव तज्ज्ञानं भवार्णव-पारकं यद् विद्यते ।।५।।

पठ्यतां सा यत्नतः, सुश्रद्धया साऽधीयताम् ।
रत्नजातं यत् तदन्तर्वर्ति तत् स्वन्विष्यताम् ।।६।।

धन्यधन्यं जीवितं तेषां हि ये तत्पारगाः ।
रत्नमालाया वितरणे, ये बुधाः सततं रताः । ।।७।।

सत्कवीन् सर्वान् नमामः, सत्सुधायाः पायकान् ।
नूनमतिमुदिता भवामः, संस्मरन्तो नायकान् ।।८।।

भारते सुरभारतीयं, भातु भानुसमा सदा ।
विश्वमेतद् दिव्यभासा, भासितं स्यात् सर्वदा ।।९।।

व्यास कालीदास भास सुहर्ष वाल्मीक्यादयः ।
सन्ति यस्या रत्नभूताः सा विजयतां सर्वदा ।।१०।।

देववाणी

[श्री रत्नाकरशास्त्री, एम० ए०, इटावा]

श्रीमद्भिः वीरेन्द्र शास्त्रिभिः 'देववाणी' पत्रिका संस्कृत भाषायां प्रकाश्यत इति परिज्ञाय सुतरां सन्तोषमनुबभौ मे चेतः ।

के नाम देवाः ? का च तेषां वाणी आसीदित्युभयमपि ऐतिहासिके गहनतमे निविडे तिरोहितमिवास्ति । हिमवति–अदित्यकापु साम्राज्यमेकमासीत् । तथा चात्रेयसंहितायामुल्लिलेख चरकः " अमरवराविगुप्तं गङ्गाप्रभवं हिमवन्तं स्वीयं पूर्वं निवासं महर्षय अभिजग्मुः" । यद्यपि संस्कृत-साहित्ये स इतिहासः सुबहुचर्चितस्तिष्ठति परं विदेशीयानां प्रतारणाभिः विस्मृतमस्माभिः । देवानां कथासु मिथ्यात्वमारोपितमस्माभिः । महर्षिणा दयानन्देन एकदा पूना नगरे (महाराष्ट्रे) षोडशमितानि भाषणानि दत्तानि । तेषु कानिचन इतिहास विषयकान्यासन् । तानि सर्वाण्येव भाषणानि 'उपदेश मञ्जरी' नाम्ना पुस्तकाकारे प्रकाशितान्युपलभ्यन्ते । इतिहास विषयकेषु भाषणेषु महर्षिणा सुबहुचर्चितं देवानां साम्राज्यम् ।

तेषां देवानां राष्ट्रे सुबहून्नता वाण्यासीत् । भाषाविज्ञानवेत्तारो हि ता स्वीकुर्वन्ति । 'देवगिरा' 'देववाणी' 'वेदवाणी' तस्या एव नामानि प्रसिद्धानि । 'देव' 'वेद' शब्दयोरक्षर विपर्यासेन निरुक्त धिया विचारणेन वेदेषु देवानां भाषैव सन्निविष्टा विद्यत इति पुरोहितानां भाषातत्त्वविदामभिप्रायः । तेषां राष्ट्रे पञ्चजनमासीदिति 'पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वमिति' सूक्तेषु प्रतिपाद्यते ।

छान्दोग्योपनिषदि इतिहासोल्लेखानुरसरं देवासुरयोः परिचयः विख्यात एव– "देवासुरा ह वै यत्र संयेतिरे उभये ह प्राजापत्याः " । तयोरसुरा खलु ज्येष्ठाः कनीयांसो देवाः । समानाभिजनावपि तौ युयुधतुः । तेषां देवानां चमत्कारिकं विकासमवलोक्यैव सुराः समरेऽभियुः । किन्तु ज्येष्ठा अपि सन्यस्ते परास्ताः । तत्र देवानां सुविकसिता सैव भाषाप्यासीत् यस्यामेव भाषायां वेदाः ईश्वरात् प्राप्ता । परन्तु कालवशात् देवानामपि राष्ट्रं परिक्षीणम् । पुरन्दर एव विडौजा संवृत्तः । रघोः दशरथस्य च साहाय्यं विना स खलु

असुरानभिगन्तुं न शशाक । तेषां देवानां भाषायामिदानीं वेदा एव समुल्लिखिता उपलभ्यन्ते नान्यत् । यद्यपि देवानां सम्पर्कं सन्तिष्ठन्तो विभिन्न-देशीयाः तामेव देववाणीं स्वीयेषु व्यवहारेषु समुपयुयुजुः । तथा भावाभिव्यञ्जका शब्दा नान्यासु भाषासु समुपलभमाना जनाः देववाणीमेव साभिनिवेशं स्वीचक्रुः । अद्यावधि तासु तासु भाषासु ते ते शब्दाः मनाक् परिवृत्या समुपलभ्यन्ते । 'अहम्' 'I am' 'गम्–Go 'इतः' 'It' इत्यादयो बहवः शब्दा उदाहर्तुम् शक्यन्ते ।

किं संस्कृतभाषैव देववाणी ?

देववाणी वेदवाण्येव न संस्कृतम् । महर्षिः पतञ्जलिः स्वकीये महाभाष्ये अवतरणिकायामेवोल्लिलेख— अथ शब्दानुशासनम् ।

केषां शब्दानाम् ? लौकिकानां वैदिकानाञ्च । लौकिकाः गौरश्वः पुरुषो हस्तीति । वैदिक खल्वपि– 'अग्निमीले पुरोहितम्' 'इषे त्वोर्जे त्वेति' । इति ईसवीयसम्वत्सरात्सार्धैकशताब्दिपूर्वम् संस्कृतभाषातः देववाणी भिन्नैवासीदिति सुबोध्यते । लौकिका संस्कृतवाणी । वैदिका देववाण्येवेति न विवादास्पदम् । देववाणी पतञ्जलेरपि काले लौकिका नासीत् । लौकिकत्वं नाम लोकव्यवहारे प्रसिद्धा भाषा सा लौकिका । यथा हि आंग्लानां शासने भारतीयानां लौकिका भाषा हिन्दी भाषा सम्बभूव । अलौकिका खलु आंग्लभाषा (अँगरेज़ी) । तथैव पतञ्जलेरपि काले देववाणी अलौकिका व्यतिष्ठत् । ईसवीय कालात् सप्त शतकात् पूर्वम् पाणिनिः स्वीयेन व्याकरणेन कां भाषां संचस्कार यया संस्कृत भाषा प्रसूता ? इति पाणिनीयाः वरं जानन्ति । प्राचाम् मध्यानाम्, पराचाम् औत्तरिक दाक्षिणात्यानाम् च विसङ्गतेषु भाषाव्यवहारेषु समष्टि संग्रहण परायणायाः भाषायाः प्रवर्तिता पाणिनिर्बभूव । सैव संस्कृत भाषा । पाणिनेरपि एक शताब्द पूर्वजातेन विदुषा यास्काचार्येण निरुक्त शास्त्रोल्लेखनेन देववाण्या लोकव्यवहार वहिर्गतत्वं बोध्यते । केषुचित् काठकेषु कालापकेष्वेव तस्या प्रणयपरिष्वङ्ग प्राप्यते, न जनेषु ।

एवं हि एतेषां त्रयाणामपि लेखेषु 'देववाण्या' सुबहु प्राचीनत्व निर्विवादमुपलभ्यते । ईसातः सहस्र वर्षेभ्योपि पूर्वं देववाण्याः लोकव्यवहार विसंष्ठुलत्वं

प्राप्यते । तस्मिन् काले का: भाषा लौकिक नाम्नुरहजनप्रापुरिति भाषा संस्कार पटुना पाणिनिनैव बोधयितुं शक्यते । तथापि भावानामभिव्यक्तौ लौकिकानां भाषाणामसामर्थ्ये विद्वांसो वेद रूप कोषादेव शब्दानुपाददुरिति मनुना सुप्रमाणीकृतम् 'वेद शब्देभ्य एवादौ लोकसंस्थांश्च निर्ममे" । इत्थ च वेदवाण्येव देववाणी, वेदभाषैव देवभाषेति विश्वासो न विप्रतिपत्तिपदं प्रपद्यते ।

भारोपीय (इन्डो यूरोपियन) भाषासु देववाण्या शब्द विस्तारस्तथैवोपलभ्यते यथा संस्कृत भाषायाम् । 'आवेस्ता' शब्दानां हि वेद शब्देभ्य: सामञ्जस्यं ध्यानाकर्षकम् । संस्कृत भाषाया: किन्नाम सस्कृतत्वम्? एतदेव तत्सस्कृतत्वम् यत् देवभाषाया एव काञ्चन विकृताकृतयो भाषा: पाणिनि, व्याडि शाकटायन, स्फोटायनाचार्यैः स्वीय स्वीय व्याकरण निर्माण पुरस्सरं परिष्कृता: । देववाण्येव कथंचिद्विकारमनुभूयमाना तैः सुसस्कृत्य लौकिकी कृतेति भाषातत्त्वविदां विश्वासः । ग्रीक, लैटिन, एरामाइक जर्मन-पारसीकाभिधासु प्रसिद्धासु भाषासु देववाण्या शब्दोद्धरण तथैव यथा लौकिक्यां संस्कृत भाषायां भारते समुपलभ्यते । स्थाने स्थाने 'बहुलं छन्दसि' इत्युल्लिखन् पाणिनिरस्म कमेव विश्वासं दृढयति ।

'किन्तु वयं भारतीया एव देवानां दायादा: ! अतएव न केवलं संस्कृतम् अपितु सम्पूर्ण 'देववाणी' अस्माभिरेव सरक्षितव्या इति स्वाभाविकम् ।

यद्यपीदानीं वैदिकानां देववाण्या: शाखाप्रशाखा: समुच्छिन्ना परन्तु 'देववाणी' प्रकाशनेन इदानीं ता: समुज्जीविता भवेयुरित्याशास्महे । कति वेदा: ? कीदृशो वेद: ? किन्तेषु लिखितमित्याद्यापि लक्ष लक्षा: भारतीया: न जानन्ति । सेयं भवत्प्रकाशिता 'देववाणी' पत्रिका तज्ज्ञानोचितं मार्गं प्रशस्ती करिष्यतीत्याशासे मदीया: शुभाशंसा: भवत्प्रयासै: सह स्थास्यन्त इति मे दृढं चेतः ।

के गत दिनांक ८ नवम्बर को ज्वालापुर में हुए असामयिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हैं। वे उस समय हमारे बीच से उठ गये जब उनकी सेवाओं की राष्ट्र को अत्यधिक आवश्यकता थी। अवसान से हुए क्षति की पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं लगती। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को सद्गति दे व हम सब आर्यगणों को धैर्य धारण की शक्ति दे।

—अमीलाल आर्य (सभाध्यक्ष) —चांदरतन दम्माणी
आर्य समाज, बड़ाबाजार, कलकत्ता २०-११-७८ (सचिव)

आज अकस्मात दैनिक ट्रिब्यून से श्री स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती विद्यामार्तण्ड के देहावसान का दुःखद समाचार पाकर मैं स्तब्ध रह गया। स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज, दीन-दलितों और देश की सेवा मे व्यतीत हुआ। उनका वेदों का पाण्डित्य और शास्त्रों का अवगाहन अपूर्व था। वे सदा अपने भाषणों से, लेखों से, शास्त्रार्थों से वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे। गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय में अनुसन्धानकर्ता और वेदोपाध्याय रहे, वर्षों तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री रहे। आर्यसमाज और वेद पर जहां से भी कोई प्रहार हुआ, उन्होंने उसका प्रतीकार करने का यत्न किया। वे संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर उनके सैंकड़ों लेख और सन्देश तो छपे ही हैं, इसके अतिरिक्त उनका लिखा हुआ स्थायी साहित्य उनकी कीर्ति को चिरस्मरणीय रखने के लिये पर्याप्त है। स्त्रियों का वेदाध्ययन और कर्मकाण्ड में अधिकार' वेदों का यथार्थ स्वरुप, सामवेद और ऋग्वेद का अंग्रेजी भाष्य आदि उनकी पुस्तकें वैदिक विषयो पर संसार को प्रकाश देने वाली हैं।

उन्होंने शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार चारों आश्रमों का पालन किया। इस समय वे शरीर से रुग्ण होते हुए भी सन्यासी के रूपमें स्थान-स्थानपर भ्रमण वेद प्रचार, खण्डन-मण्डन आदि में प्रवृत्त रहते थे। विश्ववेद परिषद् तथा भ्रान्ति निवारक मण्डल के अध्यक्ष के रूप में नगर-नगर में वेद सम्मेलनों का आयोजन करवाते थे और वेदविरुद्ध मतों का खण्डन करते थे। ऋषि दयानन्द का अनन्य भक्त, स्वामी श्रद्धानन्द का सुयोग्य शिष्य, आर्य जाति का नेता देश-विदेश में अपनी विद्वता की छाप छोड़ने वाला असत्य से कभी समझौता न करने वाला, सरल स्वभाव, निश्छल, दयालु वह निर्भीक सन्यासी आज हमारे बीच नहीं है तो भी यशःशरीर से वह सदा जीवित रहेगा।

स्वामी जी के महाप्रयाण से आर्य समाज की जो क्षति हुई है वह अपूरणीय है। परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे उनके उदात्त कार्यों के अनुरूप उन्हें सद्गति प्रदान करें, तथा आर्य जाति और देश को जो कि उनका परिवार था, तथा विदेशों में बसने वाले उनके प्रेमी मित्रों को उनका वियोग सहन करने की शक्ति प्रदान करें। हमें बल दें कि हम उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का प्रयास करें। पंजाब विश्व विद्यालय के महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ की ओर से तथा चण्डीगढ़ की विश्ववेदपरिषद की शाखा की ओर से मैं दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

श्री आचार्य वीरेन्द्र जी शास्त्री
उपप्रधान, विश्व वेद परिषद्
सी, ८१७, महानगर
लखनऊ-६ (उ० प्र०)

रामनाथ
(डा० रामनाथ वेदालंकार)
अध्यक्ष दया० वै० अनुसंधान पीठ
पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

हा ! स्वामी धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड

१—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती—

स्वामी धर्मानन्द जी आर्यसाहित्य के उद्भट विद्वान्, व्यवहार में विनयशील स्वभाव के सरल और तपस्वी व्यक्ति थे। मेरे ऊपर तो उनका बड़ा स्नेह था। आयु तो परिपक्व थी, पर स्वास्थ्य की दृष्टि से ऐसी आशंका तो न थी कि वे चुनके से विमुक्त हो जायेंगे। अस्तु, प्रभु का स्नेह उन्हें ले गया।

२—पण्डित बिहारी लाल शास्त्री [उपाध्यक्ष]

धर्मानन्दो गुणी विद्वान्, सर्व शास्त्रेषु पण्डितः।
श्रुतिशीलः सुविश्वासी, वन्दनीयो मुनिर्यथा।

पूज्य स्वामिना सहमम घनिष्ठपरिचयोऽभवत्। स तु धर्मकार्येषु रुचिवान् क्रियाशील; सततोत्साही कार्यकर्ताऽऽसीत्। तेन वैदिकधर्मसमर्थने मिथ्यामत खण्डने चानेके ग्रन्था लिखिताः। तस्यान्वेशण-कुशलता, तर्कसंगतिः श्लाघ्याऽस्ति। दक्षिण प्रान्ते तेन वेद प्रचार कार्यमपि सुचारु चित्तेन कृतम्। सार्वदेशिक सभायामपि कार्यमुचितरूपेण कृतम्। सयासी भूत्वाऽपि तस्य व्यवहारो मित्रैः सह पूर्ववदेवाभवत्। वेदधर्म प्रचारे तस्य स्वाभाविकी कर्मण्यताऽऽसीत्। सम्प्रति न दृश्यते कोऽपि तत्सदृशो मस्करी यस् तस्य स्थानं गृहणीयात्। पूज्य स्वामिना हितकरं सारयुतं कार्यं कृतं यावदायुः। स स्वर्गगतोऽस्माभिर्नमस्योऽनुकरणीयश्चास्ति।

नये अध्यक्ष का चुनाव

दिनाङ्क २६-११-७८ की बैठक में उपाध्यक्ष आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री एम. ए. को स्वामी धर्मानन्द सरस्वती के देहावसान से रिक्त हुए अध्यक्ष पद पर सर्वसम्मति से निर्वाचित किया गया।

आर्यसमाज खालापार, सहारनपुर में आर्यप्रतिनिधि सभा, उ० प्र० का वार्षिकअधिवेशन२३, २४-१२-७८ को होगा।

वहीं पर २४-१२-७८ कोप्रातः ११बजे उ प्र० विश्ववेदपरिषद् की बैठक होगी।

कृपया अवश्य सम्मिलित हों तथा अध्यक्ष से मिलें।

वर्ष—१ अङ्क४—५
दिसम्बर१९७८

देववाणी

पंजीकृत संख्या- ६३२१/६२
डाक रजि० ल० एन० पी० २०९

अध्यक्ष विश्ववेदपरिषद्

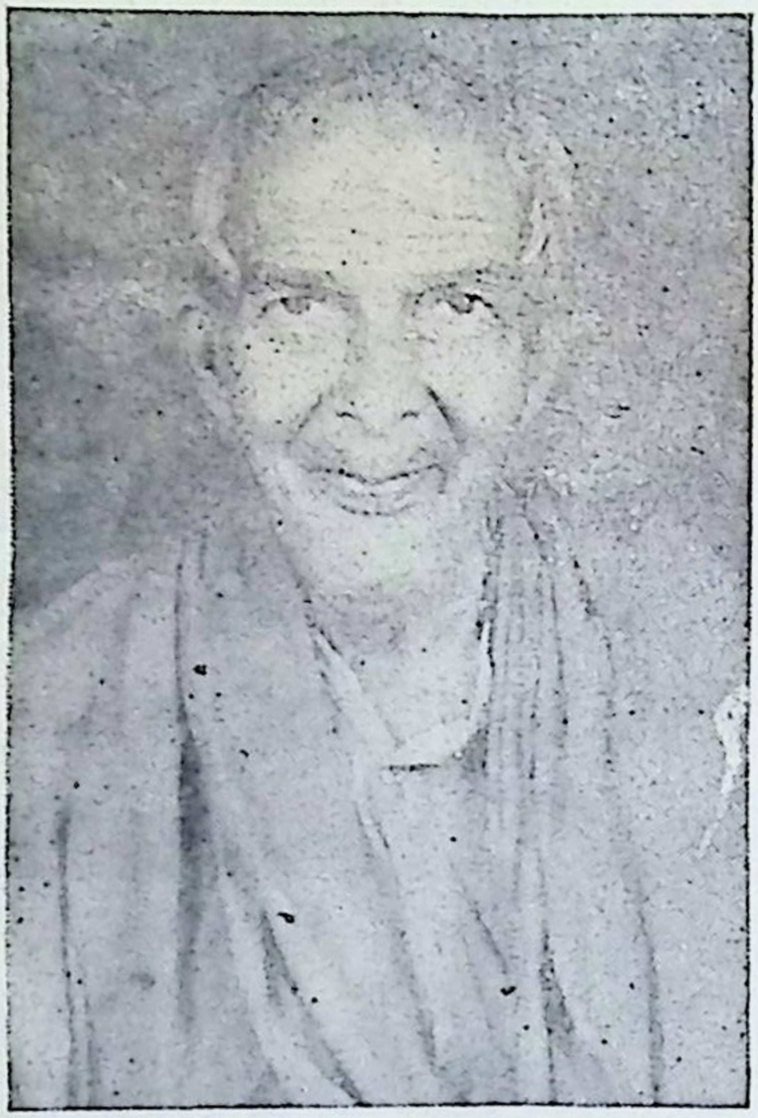

९८ वर्षीय-स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, विद्यामार्तण्ड

ज्वालापुर में ८-११-७८ को देहावसान से सर्वत्र शोक छागया

शोकसभाओं में उनकी आत्मा को शान्तिप्रदानार्थ परमात्मा सेप्रार्थनायें कीगयीं।

उनके कार्यों को प्रगति देने हेतु आप से प्रार्थना है कि—

१-यदि आप विश्ववेदपरिषद् के सदस्य नहीं बने हैं तो तुरन्त बन जाइये,

२-यदि आप का वर्ष पूर्ण हो गया होतो १०) सदस्यता शुल्क शीघ्र भेजें;

३- 'वेद ज्योति' तथा 'देववाणी' [संस्कृत] का १०) १०) कृपया शीघ्र भेजिये।

४-चारों वेदों की विशारद, भूषण रत्न परीक्षाओं में अवश्य सम्मिलित हों।

निवेदकः—सुधीन्द्रनाथ शास्त्री, एम० ए० मन्त्री विश्ववेदपरिषद्,

सी८१७ महा नगर लखनऊ-६ दूरभाष८४१०१

सेवामें श्री..

....

ओ३म्

प्रकाश–पुंज

[महर्षि दयानन्द सरस्वती रचित 'स्वमन्तव्य' का सार]

विशेषिका

स्व० श्री ज्ञानचन्द्र जी

विशेषिका का यह अंक महिला सत्संग मंडल साउथ एक्सटेंशन भाग २, की श्रद्धामयी सदस्या आदरणीया बहन श्रीमती शिव चन्द्रिका जी (ए-१२ साउथ एक्सटेंशन-भाग २) ने अपने पूज्य पति महोदय स्वर्गीय श्रीज्ञान चन्द्र जी की पुण्य-स्मृति में प्रकाशित कराया। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें तथा परिवार को सुख, समृद्धि एवं धर्म मेंश्रद्धाप्रदान करें।

दो-शब्द

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिन आर्य सिद्धान्तों की अपने ग्रन्थों में विस्तृत व्याख्या की है उनका सूत्र एवं परिभाषा रूप में संकलन 'स्वमन्तव्या मन्तव्य प्रकाश' में उन्होंने किया है। ये सार्वभौम सिद्धान्त हैं। ये वे सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर विश्व को एक किया जा सकता है। इन्हीं सिद्धान्तों पर आर्यसमाज की नींव है। आर्य समाज क्या मानता है और क्या चाहता है इसका उत्तर यह 'स्वमन्तव्या मन्तव्य प्रकाश' है। इसके अन्दर दिए गए सूत्रों को वर्गों में विभाजित करके इस रूप में इस पुस्तक में दिया गया है कि सामान्य जन को भी महर्षि की इन परिभाषाओं का अर्थ समझ में आ जाए।

आशा है विशेषिका का यह दूसरा अंक 'प्रकाश पुंज' मानव मात्र को एक सूत्र में पिरोने में समर्थ होगा और इससे महर्षि दयानन्द की आत्मा को लोग स्पष्ट रूप में समझने में समर्थ होंगे ? हम आदरणीया बहन श्रीमती शिव-चन्द्रिका जी के बहुत आभारी हैं जिनकी कृपा से यह हमारा स्वप्न पूरा हुआ है।

प्रकाश-पुंज

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में अन्त में एक 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' नाम से महत्वपूर्ण अंश दिया है जिसे 'सत्यार्थ प्रकाश' और 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' आदि ग्रन्थों का ही सारांश रूप माना जा सकता है। इसमें सर्वप्रथम महर्षि ने भूमिका रूप में एक बहुत ही मूल्यवान सन्देश और अपना मन्तव्य दिया है कि वे **धर्म के नाम से एक नित्य धर्म को मानते हैं जो स्वतंत्र सिद्धांत के रूप में माना जा सकता है।** इसी को इन्होने आगे जाकर स्पष्ट किया है और उदाहरण रूप में उन्होंने बताया कि 'सत्य बोलना और झूठ न बोलना' एक स्वतंत्र सिद्धान्त है और संसार में शायद ही कोई व्यक्ति या देश ऐसा होगा जो कि सत्य बोलने को अपराध या झूठ बोलने को पुण्य बतलायेगा। इसी प्रकार जो **सिद्धांत सदा से और सब मानते आये हैं।** उसी को महर्षि दयानन्द ने **सनातन नित्य धर्म** माना है। उनका अपने जीवन का भी उद्देश्य यही रहा कि **'सर्व सत्य'** का प्रचार किया जाए और सबको एक मत बनाया जाए। इन शब्दों से आर्य समाज के उद्देश्य और प्रयोजन का बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण हो जाता हैं। अपने आचार्य के समान ही आर्य समाज भी कोई एक नया मत न चलाकर ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्त को लेकर चलना चाहता है जो किसी के लिए भी विरुद्ध न हो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती धर्म की स्थापना में अथवा धार्मिक सिद्धान्त के स्वीकार करने में कितना उदार दृष्टिकोण रखते थे, यह बात उनके इस वक्तव्य से बहुत स्पष्ट हो जाता है। "**जो जो आर्यावर्त व अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्म युक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता ओर न करना चाहता हूं। क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।**" ऊपर के वक्तव्य से आज के लोगों के इप भ्रम का पूरी तरह निवारण हो जाता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती एक संकुचित दृष्टिकोण वाले व्यक्ति थे। अपितु इस वक्तव्य में उनकी उदारता का बड़ा सुन्दर परिचय मिलता है। महर्षि को केवल आर्यावर्त के ही सिद्धान्तों से प्रेम हो ऐसा नहीं था बल्कि वे किसी भी देश में प्रवर्तित धर्म युक्त चाल चलन को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। इसी प्रकार उनका भारत से कोई पक्षपात नहीं था और इसीलिए उन्होंने इस वक्तव्य में कहा कि यदि आर्यावर्त में कोई अधर्मयुक्त

चाल-चलन हुआ तो मैं उसको भी नहीं स्वीकार करूंगा। इस प्रकार 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' की इस भूमिका में हम महर्षि को मत मतांतरों के झगड़ों से ऊपर, स्वधर्म या पर धर्म की भ्रांति से दूर, एकमात्र 'साम्राज्य लिए हुए सार्वजनिक धर्म' को मानने वाले तथा उसका ही प्रचार करने का संकल्प लिए हुए महापुरुषों के रूप में देखते हैं।

'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में कुल ५१ बातों के बारे में अपना मन्तव्य परिभाषा के साथ सूत्र रूप में दिया है। हम इन सबको ६ वर्गों में बांट सकते हैं—

(१) राष्ट्र वर्ग
(२) समाज वर्ग
(३) व्यक्ति वर्ग
(४) प्रकृति वर्ग
(५) जीव वर्ग
(६) ईश्वर वर्ग

उनके मन्तव्य की व्याख्या आगे इसी प्रकार वर्गीकृत करके दी जा रही है ताकि जिज्ञासु पाठक महर्षि दयानन्द जी के मन्तव्यों को अच्छी तरह समझ सके और याद रख सके।

१. राष्ट्र वर्ग

१. राजा

राजा की परिभाषा करते हुए महर्षि जी ने लिखा है कि उसका गुण, कर्म, स्वभाव इस प्रकार होना चाहिए कि वह अपने अच्छे गुणों, धर्मों या स्वभाव के कारण दूसरों को भी प्रकाश दे सके अर्थात् आदर्श रूप हो। उसे पक्षपात रहित होना भी आवश्यक है। तीसरी बात राजा में यह होनी चाहिए कि वह न्याय और अन्याय को समझे और यह भी पूरी तरस जानता हो कि राजा के रूप में उसका न्याय धर्म क्या है और हमेशा केवल उसी धर्म का पालन करे। चौथी बात राजा को चाहिए कि वह प्रजा का अपने आप को पिता समझे और जिस प्रकार पुत्रों के लिए पिता बहुत ही प्यार का केन्द्र हुआ करता है,उसी प्रकार समस्त प्रजा के प्यार का केन्द्र वह बने। यही नहीं बल्कि जिस प्रकार पुत्र अपने पिता को कभी भी अपना दुःख बताने में समर्थ होते हैं और अपने पिता से दुःख का निवारण कर लिया करते हैं, उसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा के लिए सदा सुगम्य और सुलभ

होना चाहिए कि जिससे जब भी जो भी कोई अपना दुःख कहना चाहे कह सके और वह प्रजा के उस सदस्य का दुःख सहानुभूति के साथ सुनकर उसका निवारण करने में सहायक हो। पांचवीं बात राजा के अन्दर यह होनी चाहिए कि जिस प्रकार पिता अपनी उन्नति या अपना सुख बढ़ाने की फिक्र न करके अपने बच्चों के सुख को बढ़ाता और उनकी उन्नति में तत्पर रहता है, उसी प्रकार राजा यह समझे कि प्रजा की उन्नति में उसकी उन्नति और प्रजा के सुख में उसका सुख है।

२. प्रजा

महर्षि के अनुसार आदर्श राष्ट्र की प्रजा में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(१) राजा के समान ही उसका गुण, कर्म और स्वभाव भी पवित्र होना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जैसे अध्यात्म राष्ट्र में राजा रूप ईश्वर पवित्र गुण. कर्म, स्वभाव वाला है और आत्मा जो प्रजा स्थानीय मानी जा सकती है ईश्वर के समान ही पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव वाली है, ऐसी ही प्रजा को होना चाहिए।

(२) राजा के समान ही पक्षपात रहित होना चाहिए।

(३) प्रजा को चाहिए कि न्याय के अनुसार चले और धर्म का पालन करे।

(४) जिस प्रकार राजा प्रजा की उन्नति को अपनी उन्नति और प्रजा के सुख को अपना सुख मानता है उसी प्रकार प्रजा को भी चाहिए कि केवल अपनी उन्नति और अपने सुख तक अपने आपको सीमित न रखकर राजा की उन्नति और राजा के सुख को भी अपनी दृष्टि में रखे।

(५) कभी भी आदर्श धर्माचारी न्याय पालक राजा के प्रति कोई भी विद्रोह का काम न करे।

(६) जिस प्रकार राजा प्रजा को पुत्र मानकर पिता के समान वर्ताव करता है उसी प्रकार प्रजा भी अपने आपको राजा का पुत्र माने। वैदिक प्रजातंत्र की यही विशेषता है। प्रजा राजा को चुनती अवश्य है मगर यह न समझकर कि हमने राजा को चुना है इसलिए राजा हमारी आज्ञा का पालक है, प्रजा को यह समझना चाहिए कि हमने जिसको राजा चुना है वह हमारे पिता के तुल्य है और हम उसके हमेशा पुत्र के तुल्य है।

३.न्याय—प्रश्न उठता था कि राजा और प्रजा के लिए जो न्याय शब्द दिया है उसका अर्थ क्या है और वास्तव में न्याय कार्य कौन है ? इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि ने कहा कि (१)न्याय कार्य वह है जो पूर्ण विचार करके असत्य को छोड़े और सत्य को ग्रहण करे और (२) अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे और (३) जिस प्रकार वह अपने लिए सुख चाहता है सब के लिए भी सुख चाहे। अर्थात् जिन-जिन बातों से उसको दुःख होता है वह दूसरे के लिए कभी न करे।

आर्यावर्त

महर्षि ने भारत भूमि का नाम आर्यावर्त दिया है और उसकी व्याख्या भी साथ में कर दी कि इस भूमि का नाम आर्यावर्त इसलिए हैं कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते आये है। साथ ही मनु स्मृति के आधार पर उन्होंने आर्यवर्त की मूल सीमा भी दी है और उनके अनुसार आर्यवर्त की मूल सीमा उत्तर में हिमाचल, दक्षिण में विंध्याचल पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है।

२. समाज वर्ग—

समाज को बनाने में सबसे मुख्य हाथ वर्णाश्रम धर्म और इस वर्णाश्रम धर्म से संबधित बहुत से निकटतम व्यक्तियों का, इन सब की व्याख्या सूत्र रूप में महर्षि दयानंद ने निम्नलिखित रूप में की है:—

१. वर्णाश्रम

जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्य ग्रंथों में विस्तृत व्याख्या की है महर्षि वर्ण व्यवस्था की जाति या जन्म के आधार पर नहीं मानकर गुण और कर्मों की योग्यता से मानते हैं। इसी प्रकार आश्रमों में भी गुण और कर्म की व्यवस्था है।

२. आचार्य—

महर्षि ने आचार्य की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि उसमें तीन मुख्य बातों का समावेश होना चाहिए। (१) सांगोपांग सारी वेद विद्याओं का अध्यापक हो (२) हमेशा सत्य आचरण करने वाला हो। (३) कभी भी दूसरों के मिथ्याचरण को न सहे और उनको दूर करने का प्रयत्न करे। इस परिभाषा का स्पष्ट अर्थ है कि आचार्य को भी स्वयं सत्य आचरणशील और मिथ्याचार से दूर रहना चाहिए।

३. शिष्य

शिष्य वह होता है, (१) जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने की योग्यता रखता हो (२) धर्मात्मा हो (३) आलस्य और प्रमाद को छोड़कर सदा विद्या और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता हो। (४) जो अपने व्यवहार और आचरण द्वारा आचार्य को प्रसन्न रखने वाला हो। कभी भी आचार्य के लिए कोई अप्रिय आचरण न करे।

४. गुरु

महर्षि दयानंद जी ने माता-पिता को सर्वप्रथम गुरु माना है और आदर्श माता-पिता के सामान जो दूसरों से सत्य को ग्रहण कराये और असत्य को छुड़वाये वह भी गुरु कहलाता है।

५. पुरोहित

पुरोहित के अन्दर दो मुख्य गुण महर्षि दयाननंद जी ने बतलाये हैं (१) वह अपने हित और अपने सुख को सोचने के वजाय यजमान के हित और यजमान के सुख को ध्यान में रखता हो। (२) वह यजमान और उसके परिवार के हित को ध्यान में रखते हुए सत्य का उपदेश करने वाला हो।

६. उपाध्याय

आचार्य वेदों से संबंधित सारी विधाओं को पढ़ाने वाला होता है परन्तु उपाध्याय वेदों के किसी एक भाग या उसके कुछ ही अंशों को पढ़ानेवाला होता है।

७. शिष्ट और शिष्टाचार

महर्षि दयानंद की दृष्टि में शिष्ट व्यक्ति वह है जिसमें निम्नलिखित गुण हों:—

(१) जिसने धर्माचरण करते हुए विद्या ग्रहण की हो अर्थात् केवल विद्या पढ़ने लिखने मात्र से ही कोई शिष्ट नहीं बन जाता। विद्या के साथ धर्म की भी शिक्षा प्राप्त करना भी आवश्यक हैं।

(२) जिसने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याग्रहण की हो।

(३) जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों को अच्छी तरह जानता हो और उन प्रमाणों के आधार पर अच्छी तरह विचार करके सत्य का ग्रहण करे और असत्य को छोड़ दे। ऐसा शिष्ट व्यक्ति जो भी आचरण करता है, महर्षि दयानंद जी ने उसी को शिष्टाचार बतलाया है।

८. परोपकार

महर्षि के अनुसार परोपकार का उद्देश्य यस होना चाहिए कि सब मनुष्यों के दुराचरण छूटे, उनके दुखों का निवारण हो, उनको श्रेष्ठ आचरण सिखाया जाए और उनका सुख बढ़े। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखकर काम करने वाला व्यक्ति ही परोपकारी होता है।

९. विवाह

विवाह में निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक हैं :—

(१) नियम पूर्वक हो।

(२) सभी आस पास के लोग और समाज को उसकी सूचना हो।

(३) इन दोनों चीजों के साथ तीसरी बात जो मुख्य है वह यह है कि वर और कान्या दोनों की ही इच्छा इसमें होनी चाहिए।

१०. नियोग

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में आधुनिक तलाक प्रथा को समाप्त करने तथा विधवाओं के दुःख को दूर करने के लिए प्राचीन भारतीय प्रणाली के आधार पर नियोग प्रथा की समर्थन किया है। यह एक आपातकालीन चीज है और इसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो विवाह के पश्चात् पति मर जाए अथवा ऐसा कोई रोग हो जिसका इलाज न हो सकता हो।

३. व्यक्ति वर्ग

व्यक्तियों को महर्षि ने दो मुख्य वर्गों में बांटा है। प्रथम वर्ग में आप्त, देव, मनुष्य और आर्य को रखा है। दूसरे वर्ग में असुर, दस्यु, राक्षस और पिशाच को रखा है। साथ ही उन्होंने प्रथम वर्ग के मनुष्य बनने के लिए जिन मुख्य साधनों की आवश्यकता है उनकी भी सूत्र रूप में व्याख्या की है।

(१) आप्त

आप्त वह व्यक्ति है जिसके अन्दर निम्नलिखित गुण है।

(१) वह यथार्थ वक्ता हो अर्थात् जो चीज जैसी है उसकी उसी रूप में माने और कहे।

(२) धर्मात्मा हो।

(३) सब के सुख के लिए प्रयत्न करता हो।

२. देव

देव विद्वानों का नाम है।

३. मनुष्य

मनुष्य उसी को कहना कि (१) मननशील होकर स्वात्मावत् अन्य के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। (२) अन्यायकारी, बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। (३) इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हो उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान और गुणवान भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल को उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक कभी न हो। महर्षि का उपर्युक्त सन्देश मनुष्य की बहुत सुन्दर व्याख्या करता है। मनुष्य वह है जिसके अन्दर मनुष्यता है और मनुष्यता के अन्दर निम्नलिखित बातें आती हैं।

मननशीलता, स्वात्मावत् अन्यों को समझाना, अन्यायकारी बलवान से भी न डरना, धर्मात्मा निर्बल से भी डरते रहना और सदा अन्याय को समाप्त करके और न्याय को आगे बढ़ाने के लिए संकल्पशील होना।

४. आर्य

आर्य का अर्थ श्रेष्ठ है।

५. देव पूजा

विद्वानों, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा, धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना देव पूजा है।

६. शिक्षा

महर्षि के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्यादान ही नहीं है। शिक्षा पाने वाले छात्र के अन्दर उस शिक्षा के द्वारा विद्या के साथ-साथ सभ्यता, धर्मात्मा और जितेन्द्रियता आदि गुण की भी वृद्धि होनी चाहिए।

७. प्रमाण

विद्या ग्रहण करने और अविद्या के परित्याग के लिए सबसे बड़ी कसौटी आठ प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं जिनके माध्यम से धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य सत्य-असत्य, विद्या और अविद्या का सरलता से भेद समझा जा सकता है।

८. संस्कार

महर्षि के अनुसार संस्कार से न केवल शरीर की अपितु मन और

ग्रात्मा की भी उन्नति होती है। इसी आधार पर इन्होंने संस्कार विधि में सोलह संस्कारो का विधान किया है ग्रौर इन सोलह संस्कारों को 'कर्तव्य माना है। इस संबन्ध में इनका यह वाक्य ध्यान देने योग्य है --

"दाह के पश्चात् मृतक के लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए।"

९. यज्ञ

जो व्यक्ति यज्ञ का ग्रर्थ केवल यज्ञ कुण्ड में घृत ग्रौर सामग्री आदि की ग्राहुति मात्र समझते हैं वे कितनी गलती पर है ग्रौर यज्ञ का वास्तविक ग्रर्थ कितना विस्तृत है, यह महर्षि दयानन्द द्वारा दी गई यज्ञ की परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है। उनके ग्रनुसार निम्नलिखित को यज्ञ के अन्तर्गत ले सकते हैं :—

(१) विद्वानों का सत्कार।

(२) शिल्प, रसायन और पदार्थ विद्या का यथायोग्य ज्ञान और उपयोग।

(३) विद्या ग्रादि सव गुणों का दान।

(४) अग्नि होत्र आदि जिनसे वायु, वृष्टि जल, औषधि की पवित्रता करके सव जीवों को सुख पहुंचाना।

१०. तीर्थ

गंगा, यमुना, काशी, मथुरा ग्रादि पुण्य जल स्तरों को तीर्थ का नाम न देकर महर्षि ने सत्य भाषण, विद्या, सत्संग यज्ञ ग्रादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादान ग्रादि शुभ कर्मो को तीर्थ कहा हैं क्योंकि तीर्थ का अर्थ है जिससे दुःख सागर से पार उतर सके ग्रौर मनुष्य के लिए दुःख सागर से पार उतारने में एकमात्र साधन उपर्युक्त शुभ कर्म है। इसीलिए महर्षि ने इनको ही तीर्थ माना है।

११. परीक्षा

मनुष्य के लिए ग्रावश्यक हो जाता है कि जीवन के हर मोड़ पर खड़े होकर परीक्षा करें कि कौनसा मार्ग उसके लिए सही है ग्रौर कोनसा गलत है। सत्य ग्रौर असत्य के इस निर्णय के लिए महर्षि ने ५ कसौटियां दी हैं। उनके द्वारा हर बात की परीक्षा की जाती है ग्रौर जो बात इन पांचों कसौटियों पर खरी उतरे उसको सत्य ग्रौर अन्य को ग्रसत्य मानना चाहिए। ये कसौटियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) ईश्वर, उसका गुण, कर्म स्वभाव और वेद विद्या।

(२) प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण

(३) सृष्टि क्रम अर्थात् जो बात सृष्टि क्रम के विरुद्ध है अथवा सृष्टि में दीखने वाली शाश्वत् नियमों के अनुकूल नहीं है, वह असत्य है। जैसे यह कहना कि संसार बिना किसी उपादान कारण के बन गया जैसे कि घड़ा बिना किसी कारण के बन गया।

(४) आप्त पुरुषों का व्यवहार।

(५) अपनी आत्मा की पवित्रता और आत्म विद्या।

१२. **दस्यु** :—दस्यु का अर्थ है दुष्ट मनुष्य।

१३. **असुर** :—असुर का अर्थ है अविद्वान्।

१४. **राक्षस** :—राक्षस का अर्थ है पापी।

१५. **पिशाच** :—वे मनुष्य जो अनाचार करते हैं।

४. प्रकृति वर्ग :

१. सृष्टि—महर्षि ने सृष्टि की जो परिभाषा दी है, उसके अन्दर निम्न-लिखित ६ बातें है—

(१) प्रकृति एक रूप होती है। यही प्रकृति जब नाना रूप में आती है, तो उस प्रकृति का यह नाना रूप सृष्टि कहलाता है।

(२) यह नाना रूप बनता है प्रकृति के अन्दर वर्तमान पृथक द्रव्यों के मेल से। बिना कारण के सृष्टि की उत्पत्ति वैसे ही नही हो सकती जिस प्रकार संसार में बिना मिट्टी के घड़ा नहीं बन सकता।

(३) परन्तु द्रव्यों का यह मेल जिससे नाना रूप सृष्टि बनी है, आक-स्मिक सांयोगिक अथवा अव्यवस्थित नहीं है। इस मेल के अन्दर एक विशेष ज्ञान और विशेष युक्ति दिखलाई देती है। सृष्टि व्यवस्थित है। सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि की जिस प्रकार व्यवस्थित रचना और गति दीखती है, इसको देखते हुए यह सृष्टि प्रतीत होता है कि इस सृष्टि को बनाने वाले ने ज्ञान और युक्ति पूर्वक इसकी रचना की है।

२. सृष्टि का प्रयोजन

हर एक प्रश्न करता है कि परमात्मा ने यह सृष्टि बनाई क्यों ? इसका उत्तर महर्षि ने देते हुए दो मुख्य बातें दी हैं। पहली बात तो यह है कि किसीके पास जब कोई शक्ति होती है, उसकी सफलता तभी है जबकि उस शक्ति का प्रयोग हो। जैसे परमात्मा ने आँखें दी हैं तो उन आंखों का प्रयो-

जन भी है और वह है देखना। आंखे तो हैं पर देखना या देखने की जीच न हो तो आंखों का होना व्यर्थ है। इसी प्रकार सृष्टि करने की परमात्मा में सामर्थ्य है। उसके अन्दर ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव है जो सृष्टि के लिए निमित्त कारण रूप हैं। उनकी सफलता तभी होती जब परमात्मा सृष्टि रचता। इसलिए संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सृष्टि ईश्वर के अन्दर स्थित गुण, कर्म और स्वभाव का क्रियान्वयन हैं।

दूसरी बात साथ में यह भी है कि जो आत्मा अशरीरी होकर रह रही थी और जिनके कर्मो का भोग हुआ था वे अपने कर्मो का भोग तब तक नहीं कर सकते थे जबतक कि वे शरीरी न हो। इसलिए जीवात्माएं शरीर धारण करके अपने कर्मो को भोगते हुए उन्नति के पथ पर आगे बढ़ें, इस प्रयोजन से परमात्मा ने यह सृष्टि रची है।

३. सृष्टि कर्त्ता

जैसे कि सृष्टि की परिभाषा करते हुए महर्षि ने बतलाया इस सृष्टि में एक विशेष ज्ञान और विशेष युक्ति के दर्शन होते हैं। विज्ञान और युक्ति बात की प्रतिपादक है कि इसका कोई कर्त्ता अवश्य होना चाहिए। दूसरे,जड़ पदार्थ अपने आप अपना रूप नहीं वदल सकता। उसके रूप को परिर्वातत करने के लिए किसी ऐसे सामर्थ्यवान की आवश्यकता है जो उनके गुण और स्वभाव को जानता हो और उनको यथायोग्य मिलाने की सामर्थ्य रखता हो। इन सब बातों से स्पष्ट है कि सृष्टि का कर्त्ता कोई अवश्य है और वह कर्त्ता ईश्वर ही हो सकता है अन्य कोई नही।

४. अनादि पदार्थ

इस सृष्टि में ३ अनादि पदार्थ हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि होने से अनन्त भी है और इसीलिए इनको नित्य भी कहा जाता है। नित्य होने से इनका गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य है।

५. प्रवाह से अनादि

प्रकृति अनादि से परन्तु प्रकृति से उत्पन्न सृष्टि सादि और शांत है। इस सृष्टि में जो संयोग से उत्पन्न द्रव्य, गुण और कर्म हैं, वे वियोग होने पर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु उन द्रव्यों, गुणों या कर्मो के संयोग के समाप्त होने पर भी जिस सामर्थ्य से उनका प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य वियोग होने के बाद भी बनी रहती है। परिणाम यह होता है कि यह वियोग होने के बाद भी दुबारा वे उनकी उस सामर्थ्य से संयुक्त हो जाते है। इसीलिए महर्षि ने द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनों को प्रवाह से अनादि माना है। अर्थात्

स्थूल रूप में सादि और शात होने पर भी इनका संयोग सामर्थ्य हमेशा प्रवाह के रूप में बनी रहती है, इसलिए ये प्रवाह से अनादि माने जाते है।

५. जीव वर्ग

१. जीव

जीव जिसको आत्मा भी कहा जाता है अल्पज्ञ है, नित्य है और यह इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख और ज्ञान आदि गुणों से युक्त है।

जीवात्मा स्वरूप से और वैधर्म्य से परमात्मा से भिन्न है। परन्तु परमात्मा के द्वारा व्याप्य होने से तथा कुछ साधर्म्य से वह उससे अभिन्न भी है।

२. मुक्ति

मुक्ति का अर्थ है सब दुःखों से छूट कर बंध रहित होकर सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना और नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग कर फिर से संसार में आना।

३. मुक्ति के साधन

मुक्ति के साधन निम्नलिखित हैं—

(१) ईश्वर उपासना अथवा योगाभ्यास।
(२) धर्मानुष्ठान।
(३) ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति।
(४) आप्त विद्वानों का संग।
(५) सत्य विद्या
(६) सुविचार
(७) पुरुषार्थ

४. बन्ध

बंध का अर्थ है जिसे भोगने की इच्छा न होने पर भोगना पड़े। यह बंध जीव को अविद्या के कारण हुआ करता है। अविद्या के कारण जीव पाप कर्म करने लगता है। ईश्वर से भिन्न की उपासना करता है बहुत से अज्ञानों का आश्रय बन जाता है जिससे दुःख रूप फल मिला करते हैं और वह जीवात्मा इन दुःख रूप फलों को भोगना तो नहीं चाहता लेकिन उसे भोगना पड़ता है, यह उसका बंध रूप है।

५. धर्म

महर्षि के अनुसार धर्म वह है जिसमें निम्नलिखित ४ बातें हैं—

(१) पक्षपात से रहित, न्यायपूर्वक आचरण।

(२) जो सत्य भाषण ग्रादि से युक्त हो।

(३) वेदों में दी गई ईश्वर की ग्राज्ञा भी धर्म है।

(४) धर्म वह है जो वेदों के ग्रविरुद्ध है।

इसके विपरीत जिसमें पक्षपात है, जिसमें ग्रन्याय का आचरण है, जो मिथ्या भाषण ग्रादि से युक्त है ग्रथवा जिस के द्वारा ईश्वर की ग्राज्ञा भंग होती है या जो वेद विरुद्ध है, वह सब अधर्म है।

६. **अर्थ**—ग्रर्थ वह है जो धर्म से ही प्राप्त किया जाए।

७. **काम**—काम वे हैं जो धर्म और ग्रर्थ से प्राप्त किए जाते हैं।

८. **स्वतंत्र-परतंत्र**—जीव ग्रपने कर्मों से स्वतंत्र है। परन्तु कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतंत्र है।

९. जन्म

ग्रात्मा के शरीर धारण कर संसार में प्रकट होने को महर्षि ने जन्म कहा है। यह तीन प्रकार का है। पूर्व जन्म, पर जन्म ग्रौर मध्य जन्म। पूर्व जन्म का अर्थ है जो वर्तमान जन्म से पहले का जन्म है। पर जन्म का अर्थ है जो वर्तमान जन्म के बाद मृत्यु के उपरान्त दूसरा जन्म होगा। पूर्व ग्रौर पर जन्मों के बीच की वर्तमान कड़ी मध्य जन्म के रूप में है।

१०. **मृत्यु**—जिस प्रकार शरीर के ग्रात्मा के साथ संयोग का नाम जन्म है, इसी प्रकार ग्रात्मा से शरीर के वियोग मात्र को महर्षि ने मृत्यु कहा है।

११. **स्वर्ग**—महर्षि ने सुख विशेष के भोग ग्रौर उसकी सामग्री की पूर्ति को स्वर्ग बतलाया है।

१२. **नरक**—दुःख विशेष के भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति को नरक बतलाया है। इन दोनों ऊपर की परिभाषाग्रों से स्पष्ट है कि केवल सुख विशेष का भोग या दुःख विशेष का भोग मात्र ही स्वर्ग या नरक नहीं अपितु उस भोग की सामग्री की प्राप्ति ग्रौर जिस तरह से सामग्री की पूर्ति हुई है, वह भी स्वर्ग या नरक है।

१३. पुरुषार्थ और प्रारब्ध

प्रश्न उठता है कि पुरुषार्थ बड़ा है कि प्रारब्ध? महर्षि ने इसका निम्न-लिखित तर्क के ग्राधार पर यह दिया है कि पुरुषार्थ ही प्रारब्ध से बड़ा है क्योंकि—

(१) पुरुषार्थ ही संचित होकर प्रारब्ध बनाता है।

(२) इसलिए पुरुषार्थ के सुधरने पर प्रारब्ध सुधरता है ग्रौर

(३) पुरुषार्थ के बिगड़ने पर प्रारब्ध भी बिगड़ जाता है।

१४. पुराण

वेदों के समान ही पुराणों का ज्ञान भी जीवात्मा के लिए उन्नति में सहायक है। परन्तु पुराण का अर्थ भागवत आदि पुराण से नहीं है अपितु ब्रह्मा आदि ऋषियों द्वारा बनाये गये ऐतरेय आदि ब्राह्मण पुस्तकों से है।

६. ईश्वर वर्ग

१. ईश्वर

महर्षि ने ईश्वर का जो स्वरूप प्रतिपादित किया है, वह संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

१. ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम उसी ईश्वर के हैं।

२. वह सत चित आनंद आदि लक्षणों से युक्त है।

३. उसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र है।

४. वह सर्वज्ञ,निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनंत सर्वशक्तिगान्, दयालु आर न्यायकारी है।

५. वह सृष्टि का करने वाला, उसको धारण करने वाला और उसको हरण करने वाला है।

६. वह सब जीवों को उनके कर्म के अनुसार सत्य, न्याय से फलदेने वाला है।

७. वेदों के द्वारा जीवात्मा की उन्नति के लिए उसने धर्म का सन्देश दिया है।

८. वह उपास्य है और सब का पिता है।

९. वह अपना काम करने में पूर्ण स्वतंत्र है।

१०.वह नित्य हैं और उसका गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य है।

११. वह जीव से भिन्न भी है परन्तु जीव में व्यापर होने से अभिन्न भी है।

२. वेद-महर्षि संहिता मंत्र भाग को वेद मानते है। यह मंत्र भाग ईश्वर प्रणीत है और विद्याधर्म युक्त है। यह निभ्रान्त है। महर्षि इन वेदों को उसी प्रकार स्वतः प्रमाण मानते हैं,। अर्थात् जैसे सूर्य स्वतः प्रकाशक होकर अन्य को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वेद भी स्वतः प्रमाण होकर अन्य ग्रन्थों के प्रमाणीकरण के लिए आधार रूप हैं। इनके प्रमाण के लिए अन्य ग्रन्थों के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, जैसे कि सूर्य को देखने के लिए अन्य

दीपक आदि की आवश्यकता नहीं होती। वेदों के साथ ही महर्षि ने ४ उपवेद और वेदों की ११२७ शाखाओं को प्रमाण माना है। साथ ही उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी हैं कि इनको परतः प्रमाण मानते है। क्योंकि वे वेदो के व्याख्यान रूप हैं और ब्रह्मादि महर्षि के द्वारा बनाये गए हैं। महर्षि इनको परतः प्रमाण मानते हैं। इस संदर्भ में महर्षि का यह वाक्य ध्यान देने योग्य है। (में उन्हें) ,वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन है उन्हें अप्रमाण करता हूं।

३. स्तुतिः—गुण कीर्तन करना, या गुणों का श्रवण या गुणों का ज्ञान प्राप्त करना इस सब को महर्षि स्तुति के अन्दर मानते है।

४. प्रार्थनाः—महर्षि ने प्रार्थना की जो परिभाषा दी हैं उसमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनके कथनानुसार प्रार्थना करने से पहले यह आवश्यक है कि जिस चीज़ के लिए प्रार्थना की जाए उसके लिए पहले सामर्थ्य पैदा कर ली जाए। दूसरी बिशेषता इसमें यह है कि ईश्वर से उन विज्ञान आदि चीजों के लिए याचना करनी चाहिए जो कि ईश्वर से समय से पूर्व होते है। इन दोनों बातों को रखकर महर्षि ने अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर से प्रर्थना करने का संसार का ढंग गलत हैं। क्योंकि संसार न तो विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है और न ही प्रार्थना करने से पूर्व सामर्थ्य ही पैदा करता है।

५. उपासनाः—महर्षि की परिभाषा के अनुसार निम्नलिखित ३ बाते उपासना के अन्तर्गत आती हैं:—

१ जिस प्रकार ईश्वर के गुण, कर्म पवित्र हैं, वैसे ही अपने गुण, कर्म, स्वभाव को भी पवित्र करना।

२ ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य जानकर ऐसा निश्चय करना हम ईश्वर के समीप है और ईश्वर हमारे समीप हैं।

३ योगाभ्यास से ईश्वर का साक्षात्कार करना।

४. सगुण, निर्गुन, स्तुति प्रार्थनोपासनाः—

१ सगुण. निर्गुण स्तुतिः—जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त मानकर उसका कीर्तन करना और जो बातें उसमें नहीं हैं उससे पृथक मानकर उसकी प्रशंसा करना सगुण,-निर्गुण, स्तुति हैं।

२ सगुण, निरगुण प्रार्थनाः—सब गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा करना सगुण प्रार्थना और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा की सहायता अच्छा

निर्गुण प्रार्थना हैं ।

३ सगुण-निर्गुणपासना:—परमात्मा को सब गुणों से युक्त और सब दोषों से रहित मानकर अपनी आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना, सगुण निरगुणोंपासना कहलाती हैं।

इस प्रकार महर्षि दयानंद सरस्वती ने आध्यात्म तत्वों की बड़ी सुन्दर स्पष्ट और सूत्र रूप परिभाषा अपने स्वमन्तव्या-मन्तव्य प्रकाश में दी हैं जो जिज्ञासु धार्मिक व्यक्तियों के लिए स्वाध्याय एवं मनन करने योग्य है इनको देने का एकमात्र प्रयोजन यही है कि संसार के सम्मुख एक ऐसा सत्य सिद्धांत रखा जाए जिससे सब लोग 'सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनंनदित रहें।

CAREERS DIGEST

A JOURNAL OF CAREERS COMPETITIONS
ANL CURRENT AFFAIRS

- Gives the BEST in General Knowledge, General English and Essays.
- Keeps you FULLY ALERT on Current Events—National, International, Economic, Political, Scientific and Cultural.
- Solves most of the RIDDLES, PROBLEMS, QUERIES of your examination.
- Makes you participate in day-to-day INTELLECTUAL CONTROVERSIES.
- Gives a PICK-UP TO YOUR STUDIES and makes you shine out brightly.

ALSO

Special features and supplements

for forthcoming Competitive Examinations including I. I. T, I. M. A., N. D. A., Entrance Exam. of Medical Colleges, I.A.S. & Allied Services etc.

Send Annual subscription of Rs. 25/- by M. O. to :

The Circulation Manager,

CAREERS DIGEST

21, SHANKAR MARKET, NEW DELHI-110001.